पशुधन ज्ञान

वर्ष : 2 | अंक : 2 | जुलाई, 2016 | अर्धवार्षिक, हिसार | शुल्क : 30/-

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार - 125004 (हरियाणा)

प्रकाशक:

डॉ. आर.एस.श्योकन्द

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार-125004 (हरियाणा)

सम्पादक:

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डल:

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. विशाल शर्मा

डॉ. स्नेहिल गुप्ता

टंकन सहायक:

सूरज

प्रकाशक: डॉ. आर.एस. श्योकन्द, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जुलाई, 2016 को प्रकाशित किया।

निर्देश: इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्राँडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

डॉ. गुरदयाल सिंह
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया: कृषि कार्यक्षेत्र पर आधारित है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। पशुपालन के बिना देश की खाद्य व्यवस्था का प्रबंधन बहुत कठिन है। सच तो यह है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होते कृषि क्षेत्र ने आज पशुपालन को अत्याधिक प्रगतिशील क्षेत्र बना दिया है। पिछले कुछ दशकों में पशुपालन व्यवसाय में निरंतर वृद्धि देखने को मिली है। 19वीं अखिल भारतीय पशुधन-गणना के आंकड़ों के अनुसार सन् 2012 में भारत में पशुधन की संख्या 512 मिलियन थी। इसी के परिणाम स्वरूप हमारा देश विश्व में अधिकतम दुग्ध उत्पादक देश बना है। विश्व के कुल दूध उत्पादन के 13.1 प्रतिशत भाग का श्रेय हमारे देश को ही जाता है। परन्तु फिर भी भारत में प्रति व्यक्ति 252 ग्राम दूध ही उपलब्ध है, जो कि 265 ग्राम प्रति व्यक्ति विश्व की औसत से कम है।

बड़े हर्ष का विषय है कि हरियाणा प्रदेश में वर्ष 2014-15 में कुल 79 लाख टन दुग्ध उत्पादन हुआ जिस कारण हरियाणा के प्रति व्यक्ति को हर दिन 805 ग्राम दूध की उपलब्धता थी, जो विश्व की औसत से बहुत अधिक है। वर्ष 2015-16 में प्रदेश में दुग्ध उत्पादन और भी बढ़ कर 83 लाख टन हो गया है तथा अब हर दिन प्रति व्यक्ति 835 ग्राम दूध की उपलब्धता हो गई है। हरियाणा में इस प्रकार दुग्ध उत्पादन में एक वर्ष में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि विश्व स्तर पर औसत वृद्धि केवल 3 प्रतिशत के लगभग आँकी गई है।

पशुजन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता निरन्तर बढ़ रही है। वर्ष 2009-10 के आँकड़ों के अनुसार, हरियाणा में पशुधन क्षेत्र का उत्पादन लगभग 18,000 करोड़ रुपये था जो कि खेती-बाड़ी उद्योग के सकल उत्पाद 37,000 करोड़ रुपये का लगभग 50 प्रतिशत था। इस क्षेत्र में किसानों की अपार सफलता की सम्भावना को देखते हुए हमारे विश्वविद्यालय द्वारा पूरे प्रदेश के किसानों के ज्ञान व कौशल वर्धन के लिए बड़े पैमाने पर कार्य किया जा रहा है। विस्तार शिक्षा निदेशालय की इन कार्यों में विशेष भूमिका है।

विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित पशुधन ज्ञान पत्रिका वास्तव में वैज्ञानिकों के शोध, ज्ञान, विचार, परामर्श व अन्य लाभप्रद जानकारियों का विशाल स्रोत है। इस पत्रिका के नए अंक के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक, पत्रिका के सम्पादक व विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं। किसान वर्ग, पशुपालक व पशु उत्पादों से सम्बंधित व्यवसायिओं से मेरा निवेदन है कि वे पत्रिका में दी गई जानकारियों को स्वयं संचित कर अन्य जनमानस में भी बाँटे ताकि यह ज्ञान शिक्षित और अशिक्षित सभी को लाभान्वित कर हमारे उद्देश्य की पूर्ति करे।

(गुरदयाल सिंह)

डॉ. आर.एस. श्योकन्द
निदेशक, विस्तार शिक्षा
लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

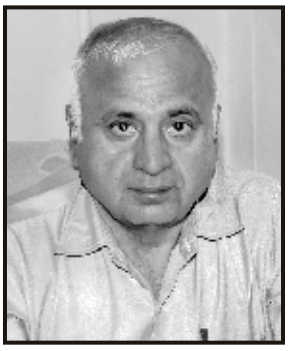

संदेश

पर्यावरण में निरन्तर हो रहे परिवर्तन और कम होती जा रही कृषि योग्य भूमि के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति पर बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विषम परिस्थितियों में कृषि के साथ-साथ पशुपालन अपना कर किसान अधिक आय अर्जित कर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में नकद लाभ और लगातार आय का पशुपालन से बढ़िया और कोई विकल्प नहीं है। आज के युग में कृषि के विविधिकरण का बहुत महत्त्व है। आवश्यकता है कि कृषि के साथ-साथ किसान भाई पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन व पशुओं से प्राप्त होने वाले अन्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन को व्यावसायिक रूप से अपनाएँ। हरियाणा प्रान्त ने प्रारम्भ से ही पशुपालन क्षेत्र में बहुत उन्नति की है।

कई बार लाभदायक होते हुए भी पशुपालन विषय पर वैज्ञानिक जानकारी न होने के कारण पशुपालकों को पूरा आर्थिक लाभ नहीं मिल पाता है। इसलिए कृषक वर्ग के लिए यह अति आवश्यक है कि उसे पशुपालन क्षेत्र में तकनीकी विकास की नवीनतम व लाभदायक जानकारी प्राप्त करवाई जाए। पशुपालकों के उत्थान में लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिकों का सराहनीय योगदान रहा है। जागरुक पशुपालक वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर आर्थिक रूप से लगातार सक्षम बन रहे हैं, परन्तु बहुत से पशुपालक ऐसे भी हैं, जिन्हें इन आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान नहीं है। ऐसे किसानों को यह समझना चाहिए कि उन्नत वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाएँ बिना केवल परम्परागत तरीकों से कोई भी व्यवसाय विकसित रूप प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है।

पशुपालन के क्षेत्र में उच्चतम कोटि के तकनीकी विकास की आवश्यकता को देखते हुए विश्वविद्यालय अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं में पशुओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर अनुसंधान कर उनके निवारण में कार्यरत है। यहाँ देश-विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक किसानों की उन्नति के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्ष 2016 का द्वितिय अंक पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि इसके द्वारा पशुपालन से सम्बंधित हर प्रकार का ज्ञान पशुपालकों के घर-घर पहुँचेगा।

कृषक भाईयों व बहनों से विनम्र निवेदन है कि वे इस पत्रिका से अर्जित ज्ञान को अपना कर अन्य किसान पशुपालकों को भी बांटें। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों, सहयोगी अधिकारियों व सम्पादकीय मण्डल का धन्यवाद करते हुए आग्रह करता हूँ कि वे भविष्य में भी इस पत्रिका द्वारा पशुपालकों को लाभान्वित करने में सदैव तत्पर रहें।

(आर.एस. श्योकन्द)

सम्पादक की कलम से...

किसान भाईयों, प्राचीन काल से ही मानवीय सभ्यता के विकास में पशुओं का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साल दर साल समय बदलता गया सभ्यता के विकास में शताब्दियों से निरंतर बदलाव होता गया। लकड़ी के घूमते चकरे ने बड़े भारी भरकम विमानों का रूप ले लिया फिर भी बैलगाड़ी, घोड़ा–घाड़ी और अन्य पशुओं का महत्त्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। आधुनीकरण के वर्तमान युग में भी हम दूध–दही, मक्खन, पनीर, गोश्त, अण्डे व ऊन आदि भौतिक वस्तुओं के लिए पशुओं पर निर्भर हैं। वास्तव में वास्तविकता तो ये है कि हमारी खाद्य व्यवस्था ही न संभले यदि पशुपालन न किया जाए तो, क्योंकि बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण और भूमंडलीय विपदाएँ जैसे अकाल, बाढ़ आदि में पशुधन ही आर्थिक संकट से निपटने का सस्ता और सरल साधन है। कृषि के साथ आसानी से होने के कारण इस पर खर्चा भी कम होता है। वैसे भी बढ़ती जनसंख्या के साथ हमारी जमीन बढ़ने वाली है नहीं। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवारों में सदस्य तो बढ़ते हैं पर किसान के पास उनको बाँटने के लिए प्रर्याप्त भूमि सम्पदा नहीं होती। कम कृषि भूमि में कृषि के साथ पशुपालन ही किसानों का एक अच्छा सहारा बन सकता है। जिससे वह घर की आर्थिक जरूरतें पूरी कर सकता है।

मनुष्य पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्राणी है, यदि मानव जाति पशुपालन से लाभ कमाने के लिए अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेकर प्राचीन रुढ़िवादी तरीकों से हट कर नये वैज्ञानिक तरीकों से पशुपालन करें तो भाईयों इसमें कोई शक नहीं कि वह पशुपालन में भी पैसा और नाम दोनों प्राप्त कर सकता है। हमारे विश्वविद्यालय द्वारा लगाए गए समय–समय पर मेलों और प्रदर्शनियों में उन्नत पशुपालकों को सम्मानित भी किया गया है। अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं में उनका नाम भी हुआ है। हमारी महिला बहनें पशुधन की सेवा बड़े ही सेवाभाव से करती हैं।

भारत में पशुपालन से सम्बंधित बहुत से विश्वविद्यालय हैं, जिनमें लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार भी बहुत विख्यात है। इस विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पशुपालन से सम्बंधित अनेकों शोध कार्य किए हैं, जो पशु प्रजनन, पशु नस्ल सुधार, पशु आवास, पशु आहार व घातक बीमारियों के निवारण से जुड़े हुए हैं। इन शोध कार्यों के द्वारा जनकल्याण की भावना को बढ़ावा देना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

हमारे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक सोच केवल हम तक न रहे, इस उद्देश्य को सम्मुख रख इस सोच और नई तकनीक को घर–घर पहुँचाने के लिए इस ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के रूप में संचित कर दिया है। आपको यह जानकर भी खुशी होगी कि इस संचित ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के अंक के रूप में आपके पठन–पाठन लायक बना कर प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पत्रिका में पशु नस्लों की जानकारी, नस्ल सुधार, पशु आवास प्रबंधन, पशु आहार प्रबंधन विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, टीकाकरण, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु–विषाणु जनित रोग, दुग्ध और माँस उत्पादन, सफल पशुपालक की कहानी आदि विषयों पर जानकारी आपको मिलेगी। यह पत्रिका आपके लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक व उपयोगी सिद्ध होगी। मेरा पशुपालकों से करबद्ध निवेदन है कि पत्रिका में बताई गई दवाइयों को चिकित्सक की सलाह लेकर ही पशुओं को दीजिए।

अन्ततः मुझे आशा है कि यह पत्रिका किसानों, पशुपालकों व पशुपालन से जुड़े व्यवसायिक समुदाय के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी। मैं इस पत्रिका के वर्ष 2016 द्वितीय अंक के सफल प्रकाशन के लिए कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण और संपादकीय मंडल का बहुत–बहुत आभार प्रकट करते हुए हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

(देवेन्द्र सिंह)

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1.	ग्रामीणों के लिए डेयरी व्यवसाय–बेहतरीन स्वरोजगार विकल्प	दिपिन चन्द्र यादव, देवेन्द्र सिंह, प्रवीन कुमार एवं विशाल शर्मा	1
2.	डेयरी व्यवसाय की भविष्य में चुनौतियाँ	दिपिन चन्द्र यादव, देवेन्द्र सिंह बिढान, विशाल शर्मा एवं सुशील कुमार	3
3.	पशु मेले में प्रतियोगिता के लिए पशुओं की तैयारी कैसे करें	दिपिन चन्द्र यादव, देवेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह एवं कमलदीप	4
4.	दूध की संरचना एवं उपयोग	सज्जन सिंह एवं दलजीत सिंह	5
5.	स्वच्छ दुग्ध उत्पादन	ऋचा, सौरभ, त्रिलोक नन्दा एवं विनय	7
6.	'हे' के रूप में हरा चारा संरक्षण	अनिका मलिक, अनीता दलाल, सरिता एवं कमलदीप	10
7.	हरा चारा, पशु स्वास्थ्य एवं दुग्धोत्पादन	अनीता दलाल, अनिका मलिक, सरिता एवं कमलदीप	11
8.	साइलेज के रूप में हरा चारा संरक्षण, विधि एवं उपयोगिता	कमलदीप, गौरव चराया, अनिका मलिक एवं रचना	14
9.	गाभिन भैंसों में गर्भकाल के अंतिम तीन माह का प्रबन्धन	ऋचा, सौरभ, अमन कुमार एवं रजनी कुमारी	16
10.	पशु प्रजनन में कृत्रिम गर्भाधान का महत्त्व	रजनी कुमारी, त्रिलोक नन्दा एवं अमन कुमार	19
11.	पशुओं में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक	कमलदीप, अनिका मलिक, प्रियंका एवं गौरव चराया	21
12.	पशु प्रजनन सम्बंधित समस्याएँ: निदान एवं उपचार	आनन्द कुमार पाण्डेय, पंकज गुणवन्त एवं पीयूष तोमर	23
13.	प्रसव उपरान्त हीमोग्लोबिन्यूरिया: कारण, लक्षण एवं उपचार	कमलदीप, अनिका मलिक एवं प्रियंका	25
14.	चयापचयन सम्बंधी समस्याएँ: जैव रासायनिक तथ्य	शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान	26
15.	पशुओं में दुग्ध ज्वर (मिल्क फीवर)	रेनू सिंह, गौरी चंद्रात्रे एवं के.के. जाखड़	28
16.	सर्दियों में बछड़ों में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ और उनका समाधान	सुदीप सोलंकी एवं संध्या मोरवाल	30
17.	गलघोटू रोग: कारण व बचाव	के.के. जाखड़, विकास नेहरा, रेनू सिंह एवं चंद्रात्रे गौरी	33
18.	बकरी पालन–छोटे किसानों के लिए वरदान	दिपिन चन्द्र यादव, देवेन्द्र सिंह एवं सुशील कुमार	36
19.	भेड़ और बकरियों में प्राणिरूजा रोग, लक्षण एवं निदान के उपाय	स्नेहलता चौहान, सोनू एवं स्नेहिल गुप्ता	38
20.	गुम्बोरों रोग: लक्षण, कारक व बचाव के उपाय	स्नेहलता चौहान, सोनू एवं स्नेहिल गुप्ता	41
21.	अंग क्रियाशीलता के जैव रासायनिक परीक्षण	शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान	44
22	बटेर पालन एक लाभदायक व्यवसाय	रजनी कुमारी, संजय कुमार, ऋचा एवं विनय	46

ग्रामीणों के लिए डेयरी व्यवसाय- बेहतरीन स्वरोजगार विकल्प

दिपिन चन्द्र यादव[1], देवेन्द्र सिंह [2], प्रवीन कुमार[1] एवं विशाल शर्मा[1]

[1] पशु उत्पादन व प्रबंधन विभाग, [2] विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

विश्व में निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण से उत्पन्न हुए हालात को देखते हुए रोजगार के साधन सीमित हो रहे है और प्रत्येक पढ़ा लिखा व्यक्ति अपनी उपजीविका हेतु रोजगार के नए-नए तरीके ढूंढ़ने के लिए प्रयत्नशील है। कृषि में ठहराव को देखते हुए, डेयरी फार्म एक बहुमूल्य विकल्प के रुप में उभर रहा है। यह व्यवसाय सामाजिक तौर पर भी काफी बढ़िया माना जाता है। जिसकी मिसाल बुजुर्गों द्वारा 'दूधों नहाओं, पुतों फलों' वाली आसीस है।

धार्मिक तौर पर भी दूध या इससे बने पदार्थ काफी महत्वपूर्ण है। डेयरी व्यवसाय के व्यापारीकरण में असीम सम्भावनाएँ है। बाजार में दूध और दूध उत्पादों की माँग बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त, दूध व्यक्ति की खुराक का महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग है। दूध का जन्म से मृत्यु तक का मानवीय सम्बंध है। पशुपालन रोजगार का काफी बड़ा साधन है। जो पशुपालक कृषि के साथ-साथ पशु भी पालते हैं उनकी वर्ष भर आमदनी सुनिश्चित हो जाती है। साथ ही कृषि सघनता भी बढ़ती है, क्योंकि चारे की फसल कुछ समय खेतों में रहती है। पशुपालन के व्यवसाय से भूमि उपजाऊ हो जाती है और यह काम जैविक कृषि हेतु काफी बड़ा वरदान साबित हो सकता है। गोबर से बनी बॉयोगैस से घरेलू रसाई का खर्चा घटेगा, प्रदूषण घटेगा एवं बची हुई सल्री से केचुआ खाद भी तैयार की जा सकती है। ये सब अतिरिक्त आय प्रदान करेगें एवं संसाधनों का सही उपयोग भी किया जा सकेगा। बदलते हालातों में डेयरी फार्म के व्यवसाय को घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने वाले सहायक व्यवसाय की जगह व्यापार एवं रोजगार के तौर पर अपनाएँ। लाभप्रद डेयरी फार्म के व्यवसाय को व्यापार एवं रोजगार के साधन के रुप में अपनाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

- डेयरी फार्म शुरु करने से पूर्व किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से इस विषय में प्रशिक्षण एवं उचित परामर्श लें।
- इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र के प्रगतिशील पशुपालकों के डेयरी फार्मों एवं पशुपालन मेलों में जाकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
- बढ़िया पशु डेयरी फार्म का आधार होते है। इसलिए अच्छी नस्ल के दुधारु पशुओं का चुनाव करें एवं उनकी नस्ल सुधार के तरीके अपनाएँ।
- पशुओं के लिए आरामदायक, हवादार एवं सस्ते शेड बनाने का प्रबंध करें।
- हरे चारे की फसलों का वर्ष भर उत्पादन सुनिश्चित करें।
- संतुलित आहार कैसे प्रदान करे - इसके लिए उचित प्रशिक्षण या परामर्श लें।
- प्रत्येक वर्ग के पशुओं का उचित प्रबंधन करे, भले ही वह कटड़ा/बछड़ा हो या फिर दूध देने वाले पशु हो।
- उचित समय पर रोगों से बचाव के टीके लगवाएँ।
- नियमित समय पर पशुओं की शरीर व उनके दूध की जाँच करवाएँ।
- अपने व्यवसाय का सही एवं सम्पूर्ण हिसाब-किताब रखें।
- दूध के उत्पाद बनाकर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है, इसके लिए प्रशिक्षण एवं उचित प्रबंध करें।

उम्मीद है, उपरोक्त बातें डेयरी फार्म में रुचि रखने वाले बेरोजगार युवकों के लिए कारगर सिद्ध होगी और डेयरी फार्म का कारोबार एक बढ़िया रोजगार का साधन साबित होगा।

डेयरी व्यवसाय की भविष्य में चुनौतियाँ

दिपिन चन्द्र यादव[1], देवेन्द्र सिंह बिढान[1], विशाल शर्मा[1] एवं सुशील कुमार[2]

[1]पशु उत्पादन व प्रबंधन विभाग, [2]पशु पोषण विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारत का डेयरी उद्योग काफी अनोखा हैं। अनोखा इसलिए क्योंकि इसमें किसानों और पेशेवरों की बेहतरीन सांझेदारी है। साथ ही करीब 65 फीसदी भैंस और गायों को छोटे और मझोले किसान पालते है। कई ग्रामीणों के पास तो अपनी जमीन भी नहीं है। ऐसे भूमिहीन या भूमिहार किसानों के हाथों में भारतीय डेयरी फलफूल रही है। खेती के साथ डेयरी का यह अनोखा मिलन है। गौर करने वाली बात यह है कि किसानों के लिए उनकी फसल कमाई का साधन होती है जबकि दूध उत्पादन वैकल्पिक व्यवसाय। यह अनोखा इसलिए भी है क्योंकि ज्यादातर किसान कर्ज में डूबे होने के बावजूद गाय और भैंस रखते हैं। उनके लिए दूध का उत्पादन करने की लागत बेहद कम आती है, लिहाजा दुनिया में सबसे सस्ता दूध भारत में मिलता है। इसके बावजूद देश में प्रति व्यक्ति दूध की खपत काफी कम ही है। लेकिन विकास की रफ्तार खाद्यानों की खपत के मुकाबले तेजी से बढ़ रही है। देश के आर्थिक विकास और लोगों की आय में इजाफे की वजह से दूध की माँग तेजी से बढ़ रही है। मौजूदा समय में बढ़ती जनसंख्या और शहरीकरण के दौर में, आने वाले समय में डेयरी क्षेत्र के और विकसित होने की पुरजोर सम्भावनाएँ है। भारत में दूध उत्पादन का करीबन आधा हिस्सा शहरी इलाकों में खप जाता है। शहरीकरण से खरीद क्षमता में इजाफा हो रहा है जिससे डेयरी के विकास को और गति मिल रही है।

लोगों की स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरुकता बढ़ने की वजह से दूध की गुणवता एवं अधिक माँग दोनों ही सुनिश्चित करना आने वाले समय में डेयरी क्षेत्र के सामने अहम चुनौती है। रोजाना तेजी से दूध पार्लरों का खुलना और लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार के दूध उत्पादों की माँग में इजाफा इसी का संकेत है। राष्ट्रीय आँकड़ों के मुताबिक पिछले 20 सालों के दौरान ग्रामीण और शहरी दोनों इलाकों में दूध जैसे पशु उत्पादों की माँग में तेजी से इजाफा हुआ है। कम लागत की वजह से भारत के डेयरी उद्योग का कई स्तरों पर विकास हो रहा है। आईसक्रीम, दूध, मक्खन और मलाई जैसे मूल्य वर्धित डेयरी उत्पादों की सालाना विकास दर करीब 8 से 10 फीसदी है। हालांकि इतना होने के बावजूद भारत में डेयरी उद्योग का आकार काफी छोटा है। ऐसे में इसमें काफी कुछ किए जाने के अवसर मौजूद है।

भारत में पहले दूध व दुग्ध उत्पादों की कमी रहती थी लेकिन अब माँग व सप्लाई में संतुलन बन चुका है। इससे भारत इस मामले में आत्मनिर्भर हो चुका है। डेयरी क्षेत्र का भविष्य कैसा होगा? इस सवाल पर लोगों के विचार बटे हुए है। एक मत है कि दूध का उत्पादन आबादी की रफ्तार से कहीं ज्यादा तेजी से बढ़ेगा। खपत स्थिर रहने पर अतिरिक्त दूध सुलभ होगा। तेजी से विकसित होते डेयरी क्षेत्र का फायदा उठाने के लिए सहकारिता व निजी क्षेत्र को गावों से दूध एकत्रित करने के नेटवर्क में ज्यादा निवेश करना होगा ताकि बीच के दुग्ध संग्रहकर्ताओं और ट्रांसपोर्टरों पर निर्भरता कम की जा सके। इस क्षेत्र के सामने गुणवता उत्पाद विकास और वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा आदि, प्रमुख चुनौतियाँ हैं। इसके लिए मानव संसाधन, दुग्ध उत्पाद, उपकरण तकनीक और निर्यात पर ध्यान केंद्रित किए जाने की जरुरत है।

पशु मेले में प्रतियोगिता के लिए पशुओं की तैयारी कैसे करें

दिपिन चन्द्र यादव[1], देवेन्द्र सिंह[2], नरेन्द्र सिंह[1] एवं कमलदीप[3]

[1]पशु उत्पादन व प्रबंधन विभाग, [2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, [3]पशु अनुवांशिकी व प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं को मेले में प्रदर्शित करने के लिए अच्छे पशुओं को ही शामिल करना चाहिए जिससे वह पशु प्रतिस्पर्धा में आ सकें। पशुपालक यदि मेले में किसी प्रतिस्पर्धा में या पशु प्रदर्शनी में भाग लेना चाहता है तो उसे पशु की तैयारी, भोजन की व्यवस्था, शरीर की साफ-सफाई एवं व्यवस्था आदि की जानकारी नीचे दी जा रही है।

1. **पशुओं का चुनाव** - पशुओं के चुनाव में ऐसे पशुओं को चुना जाए जो काफी आकर्षक, समरुप, सुडौल एवं साफ-सुथरा हो। शरीर की बनावट मजबूत, जोड़ साफ-सुथरे, आकर्षक तथा स्थूलता विहीन हो, पैर सीधे और खुर आगे से नुकीले हो। पशु की आयु के आधार पर अच्छे नस्ल के पशुओं को ही शामिल किया जाना चाहिए। दुधारु पशु का चुनाव करते समय थन नुकीले, सीधे नीचे की तरफ जाते होने चाहिए। पशु का चुनाव उसकी ल्योटी (बांक) के आधार पर किया जाता है। पशु की दूध की अवस्था का भी ख्याल रखना चाहिए। पशुओं के चुनाव के लिए साधारणत: उनकी माँसपेशियाँ, बालों की चमक, शारीरिक विकास एवं फुर्तीलापन आदि गुणों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है।

2. **पशुओं का अवलोकन** - पशुओं का सही अवलोकन करने से उनके शरीर में होने वाली संभावित कमियों का पता लगाया जा सकता है। पशु के पैर या खुर की कठिनाइयों का पता लगाकर उनकों ठीक किया जा सकता है। बाह्य रोग, चर्म रोग, जूएँ, खुजली आदि समय पर अवलोकन करने से प्रदर्शनी के समय पर ठीक किया जा सकता है। नियम है कि प्रदर्शनी में भाग लेने वाले पशु सभी प्रकार की संक्रामक बीमारियों से मुक्त होना चाहिए।

3. **आहार** - पशुओं को ऐसा आहार देना चाहिए जो मोटापा की अपेक्षा शारीरिक विकास करे। प्रदर्शनी के समय आहार न खाने जैसी कठिनाई न हो इसलिए आहार में परिवर्तन न करें।

4. **उचित अभ्यास** - पशु का उत्तम मार्गदर्शन एवं अभ्यास उसके शारीरिक बनावट में होने वाली कमियों को दूर करता या छिपा देता है। पशुओं को उसकी युवा अवस्था में धीरे-धीरे चलना, चलते समय छोटे-छोटे कदम रखना, सिर ऊँचा करके चलना, खड़े रहते समय स्फुर्तीलापन दिखाना, हल्के इशारे पर तुरन्त प्रतिक्रिया करना, शरीर का पूरा वजन समान रुप से चारों पैरों पर डालकर खड़ा रहना आदि का अभ्यास करवाना चाहिए।

5. **पशु के शरीर की सफाई** - पशु की सफाई तथा धुलाई से उसके चर्म रोग आदि का पता लग सकता है तथा उसे ठीक किया जा सकता है। ब्रश तथा खरेरा से भी पशु को साफ करने में सहायता मिलती है। नहलाने के बाद पशु की मालिश करना भी काफी लाभदायक होता है। भैंस, भैंसा तथा कटड़ियों में तेल का हल्का प्रयोग शरीर के ऊपर किया जा सकता है। पशु अगर सींग वाला है तो सींग की उचित सफाई, रगड़ाई तथा तेल की मालिश करनी चाहिए।

6. **प्रतियोगिता के लिए तैयारी** - पशु को नायलोन, चमड़ा या सूत की रस्सी की मोहरी लगाने की आदत प्रशिक्षण के समय से ही डालनी चाहिए। पशु को प्रदर्शित करने से कुछ दिन पहले मोहरी लगाएँ जिस प्रकार से उसको रिंग में घुमाएगें उसी प्रकार 8-10 दिन पहले मोहरी लगाकर घुमाएँ ताकि पशु को आदत हो जाए। प्रतियोगिता से एक दिन पहले पशु की अच्छी तरह से सफाई के बाद साफ जगह पर आराम करने दें। गोबर आदि को हटाते रहे। उसे चारा, दाना व पानी समय पर पिलाएँ।

पशु को सामान्य चाल से घुमाएँ। पशु निरीक्षक की और ध्यान दें तथा पशु को प्रदर्शित करें। पशु को प्रदर्शित करते समय मोहरी से काबू करना चाहिए तथा पशु के बांई तरफ रहें।

दूध की संरचना एवं उपयोग

सज्जन सिंह [1] एवं दलजीत सिंह [2]

[1] विस्तार शिक्षा निदेशालय, [2] पशु प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। शाकाहारी के लिए दूध और इससे बने पदार्थ भोजन में प्रोटीन की कमी को दूर करने का एक मात्र साधन है। देश में दूध को प्राचीन काल से ही एक उत्तम आहार माना जाता रहा है तथा मानव पोषण में दूध की भूमिका अग्रणीय रही है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में गौ-रस का विवरण बार-बार आता रहता है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रति व्यक्ति कम से कम 90 कि.ग्रा. दूध प्रतिवर्ष (250 ग्राम प्रतिदिन) उपलब्ध होना चाहिए। भारत में कुल दूध उत्पादन का 44 प्रतिशत गाय से तथा 55 प्रतिशत भैंस से प्राप्त किया जाता है। दूध के मुख्य घटक सभी स्तनपायी जानवरों में विद्यमान होते हैं, और उनके अनुपात में भिन्नता पाई जाती है। यह मुख्य घटक है - दूध वसा, प्रोटीन, दूध शर्करा, खनिज लवण व विटामिन।

दूध के घटकों की संरचना विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत निम्नलिखित है-

दूध वसा - यह दूध का सबसे बहुमूल्य घटक है जो कि नस्ल, खिलाई-पिलाई तथा दूध देने की अवस्था से प्रभावित होता है। भैंस के दूध में वसा की मात्रा 6 से 8 प्रतिशत होती है व गाय के दूध में 4 से 4.5 प्रतिशत वसा होती है। दूध की विशिष्ट सुगंध एवं चिकनाहट दूध वसा से ही प्राप्त होती है तथा मानव शरीर के लिए आवश्यक फैटी एसिड की पूर्ति दूध वसा द्वारा ही होती है तथा यह मानव पोषण में ऊर्जा का श्रेष्ठ स्त्रोत है। देश में घी एवं आईसक्रीम उद्योग दूध वसा पर ही निर्भर करता है तथा दूध पदार्थों में विशिष्ट स्वाद एवं सुगंध के लिए वसा का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रोटीन - दूध में प्रोटीन अथवा नाइट्रोजन पदार्थों की मात्रा औसतन 4 प्रतिशत पाई जाती है। मानव-पोषण में जरुरी एमीनों एसिड की पूर्ति का यह सर्वोत्तम स्त्रोत है। गाय के दूध में भैंस के दूध के प्रोटीन के मुकाबले लाईसीन अमीनों ऐसिडस की बहुलता पाई जाती है परन्तु आर्गेनिक लाईसीन, हिस्टीन तथा मिथायोनीन अमीनों ऐसिडस की मात्रा कम पाई जाती है। दूध के दो मुख्य घटक कैसीन तथा सीरम प्रोटीन होते है। सीरम प्रोटीन में एल्ब्यूमिन तथा ग्लोब्यूलीन मुख्य होते है। दूध में बहुत ही सीमित मात्रा में प्रोटेनितर पदार्थ पाए जाते हैं जिनमें यूरिया भी विद्यमान होता है इसके अलावा थोड़ी बहुत मात्रा में क्रियेटनीन, युरिक अम्ल, अमोनिया तथा ऐसे पानी में घुलने वाले विटामिन जिनमें हाइड्रोजन होती है पाये जाते हैं।

	पानी (%)	वसा (%)	प्रोटीन (%)	शर्करा (%)	खनिज लवण (%)	कुल ठोस पदार्थ (%)	वसा रहित कुल ठोस पदार्थ (%)
भैंस	82.10	8.0	4.2	4.9	0.8	17.9	9.9
संकर गाय	87.60	3.7	3.2	4.1	0.7	12.4	8.7
देशी गाय	86.40	4.7	3.3	4.9	0.7	13.6	8.7
बकरी	88.20	4.0	3.4	3.6	0.8	11.8	7.8
भेड़	79.50	8.5	6.7	4.3	0.9	20.5	12.0
ऊँट	87.00	2.9	3.9	5.4	0.7	13.0	10.5
मानव	88.53	3.2	1.2	6.7	0.2	11.7	8.5

दूध में बहुत से एन्जाईम्स भी पाए जाते हैं। इनमें प्रमुख एन्जाईम्स लाइपेज, प्रोटिएज परओक्सीडेस तथा एल्कलाईन फास्फैटेज है।

दूध शर्करा (लैक्टोज) - दूध शर्करा का दूध की मिठास एवं ऊर्जा में विशेष योगदान होता है। वसा और प्रोटीन के बाद यह दूध का तीसरा सबसे महत्वपूर्ण घटक है। दूध की किण्वण प्रक्रिया में सूक्ष्म जीवाणु लैक्टोज को तोड़कर ही लैक्टिक एसिड बनाकर दूध में अम्लता पैदा करते हैं। जिससे दूध के विभिन्न व्यंजन जैसे दही, योगर्ट तथा चीज़ इत्यादि बनते हैं। शिशु पोषण के लिए बनने वाले दूध व्यंजनों में दुग्ध शर्करा की विशेष भूमिका होती है।

खनिज लवण - दूध में लगभग 0.7 से 0.8 प्रतिशत खनिज लवण होते है। दूध में पाए जाने वाले सभी खनिज लवण पोषण की दृष्टि से आवश्यक है तथा इसमें कैल्शियम एवं फास्फोरस अच्छी मात्रा में पाए जाते है। दूध में कैल्शियम का अपना महत्व है, यह नवजात शिशु की हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक है। दूध को एन्जाईम (रैनिन) की उपस्थिति में जमाने में भी कैल्शियम का योगदान होता है। गाय के दूध में औसतन 0.1 से 0.5 प्रतिशत कैल्शियम पाया जाता है। फास्फोरस भी कैल्शियम की तरह हड्डियों तथा दाँतों की रचना में आवश्यक है तथा प्रत्येक कोशिका की कार्य प्रणाली में भी महत्वपूर्ण है। भैंस के दूध में कैल्शियम स्वतंत्र तथा अस्वतंत्र जुड़ी हुई दशा में पाया जाता है। भैंस के दूध में कुल फास्फोरस की मात्रा 0.12 से 0.13 तक है जबकि देशी गाय में यह मात्रा 0.10 से 0.12 प्रतिशत होती है कैल्शियम और फास्फोरस के अलावा अन्य महत्वपूर्ण खनिज लवण जैसे सोडियम, पोटाशियम, क्लोराईड, सल्फेट, आयरन, कापर, जिंक, एल्यूमिनियम, मैंगनीज, लैड, मोलीबडिनम तथा सिलिकोन है।

विटामिन - विटामिन प्राणाधार माने जाते हैं। सामान्य वृद्धि, अच्छे स्वास्थ्य एवं प्रजनन के लिए विटामिन अति आवश्यक है। दूध में दो प्रकार के विटामिन पाए जाते है। एक जो पानी में घुलनशील है और दूसरे वसा में घुलनशील होते है। गाय के दूध का हल्का पीलापन दूध में विटामिन 'ए' के प्रीक्रसर

कैरोटीन के कारण होता है। जबकि भैंस के दूध में विटामिन-ए कैरोटीन से पूर्णरुप में विटामिन-ए में परिवर्तित हो जाता है जो कि रंगहीन होता है। भैंस के दूध में विटामिन-ए की मात्रा 0.69 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है जबकि गाय के दूध में यह मात्रा 0.48 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है। भैंस के दूध में 19.5 से 39.5 मि.ग्राम प्रति लीटर तक विटामिन-सी उपलब्ध होता है। जबकि गाय के दूध में यह मात्रा 7.8 से 7.9 मि.ग्राम प्रति लीटर होती है। इस प्रकार दूध विटामिन-ए, विटामिन डी, थाइमीन एवं राईबोफलेविन का अच्छा स्त्रोत है। परन्तु विटामिन-सी की मात्रा हमारी आवश्यकता अनुसार अत्यधिक कम होती है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन

ऋचा, सौरभ, त्रिलोक नन्दा एवं विनय
पशु जैव प्रौद्योगिकी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

दूध की परिभाषा –मादा स्तनधारी प्राणियों द्वारा अपने छोटे बच्चों के पोषण के लिए स्तन से निकलने वाले तरल पदार्थ को दूध कहा जाता है।

दूध स्वस्थ दुधारु पशु के दोहने से मिलने वाला पदार्थ है। इसमें जन्म के बाद पहले सप्ताह के दौरान मिलने वाला दूध (खीस) सम्मिलित नहीं होती है। दूध के रासायनिक तत्वों में पानी वसा, नाइट्रोजन वाले मिश्रण, शक्कर, विटामिन, खनिज पदार्थ अलग–अलग अनुपात में रहते हैं। दूध में लगभग सभी पोषक तत्व विद्यमान होते है। जो बछड़े व मनुष्य के लिए लाभदायक होते हैं। दूध को सम्पूर्ण आहार कहा जाता है। वसा दूध का महत्वपूर्ण घटक है। इसके आधार पर दूध की कीमत तय की जाती है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य

1. दूध स्वस्थ पशु से प्राप्त किया जाना चाहिए।
2. दूध में सभी पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होने चाहिए।
3. दूध में कोई बाहरी तत्व जैसे – कचरा, धूल एवं मवाद नहीं होनी चाहिए।
4. दूध में हानिकारक (बैक्टीरिया) नहीं होने चाहिए।

स्वच्छ दूध के लाभ

1. स्वच्छ दूध से बीमारियों के संक्रमण को रोका जा सकता है। जैसे टी.बी. (क्षय रोग)।
2. स्वच्छ दूध बिना खराब हुए अधिक देर तक रह सकता है।
3. स्वच्छ दूध में उत्तम गुणवत्ता के उत्पाद जैसे –मक्खन, घी, पनीर आदि बनाए जा सकते हैं।

दूध निकालते समय सावधानियाँ

1. पशुओं के स्वास्थ्य पर ध्यान देना जरुरी होता है। बीमार पशु से उत्तम गुणवत्ता वाला दूध नहीं प्राप्त किया जा सकता।
2. पशुशाला में मक्खियों की रोकथाम हेतु – फिनाईल से फर्श साफ करना चाहिए।
3. दूध देने वाले पशु को स्वच्छ रखना चाहिए। दूध निकालने से पहले थनों के आसपास पूँछ का भाग तथा हाथ की सफाई नीम के पानी या "किटाणुनाशक" घोल से धोना चाहिए।
4. एक प्रतिशत पोटाशियम प्रमेग्नेट (लाल दवाई) का घोल कप में लेकर दूध निकालने से पहले तथा बाद में थन को धोना चाहिए।
5. दूध के बर्तन को साफ रखना चाहिए।
6. दूध निकालने वाले व्यक्ति के नाखुन कटे तथा हाथ पूर्ण रुप से साफ होने चाहिए। दूध निकालने वाले व्यक्ति को किसी भी प्रकार की चमड़ी रोग नहीं होना चाहिए, जो पशुओं को लग सके।
7. दूध निकालने का समय निर्धारित होना चाहिए।
8. दूध की पहली (3–4) धार नीचे भूमि पर मारना चाहिए तथा दूध का परीक्षण करना चाहिए।
9. प्रत्येक थन से दूध की धार अलग बर्तन में लेनी चाहिए ताकि पता चल सके कि दूध सही है या खराब।

दूध दोहने (निकालने) की विधियाँ

1. अगूँठा दबाकर दूध दोहना – इस विधि में अंगूठे से थन को चारों अंगुलियों से पकड़ कर मुड़े हुए अंगूठे के बीच थन से दूध निकाला जाता है। इस विधि द्वारा थन में गाँठे पड़ जाती हैं।

2. चुटकी से दूध निकालना – इस विधि में थन को अंगूठे और पास की दो अंगुलियों से दबाकर ऊपर से नीचे की ओर खींचा जाता है। छोटे थन वाले पशुओं में यह विधि उपयुक्त है।

3. पूर्ण हाथ से निकालना– इसमें पशु को बछड़े को दूध पिलाने के समान अनुभव करता है। इस विधि से पूरा

दूध निकाला जा सकता है। एवम् पूरे थन पर एक समान प्रभाव पड़ता है।

4. **मशीन द्वारा दूध निकालना** – इस विधि का उपयोग बड़े-बड़े डेयरी फार्मों में अधिक दूध देने वाले पशुओं की संख्या ज्यादा होती है। वहाँ मशीन द्वारा पशुओं का दूध निकाला जाता है।

थनेला रोग – दुधारु पशुओं को लगने वाला एक रोग है। थनैला रोग से प्रभावित पशुओं को रोग के प्रारंभ में थन गर्म हो जाता है तथा उसमें दर्द एवं सूजन हो जाती है। शारीरिक तापमान भी बढ़ जाता है। लक्षण प्रकट होते ही दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध में छटका, खून एवं पीक (पस) की अधिकता हो जाती है। पशु खाना-पीना छोड़ देता है एवं अरुचि से ग्रसित हो जाता है।यह बीमारी सामान्यत: गाय, भैंस, बकरी एवं सूअर समेत तकरीबन सभी वैसे पशुओं में पायी जाती है, जो अपने बच्चों को दूध पिलाती है। थनैला बीमारी पशुओं में कई प्रकार के जीवाणु, विषाणु, फफूँदी एवं यीस्ट तथा मोल्ड के संक्रमण से होता हैं। इसके अलावा चोट तथा मौसमी प्रतिकूलताओं के कारण भी थनैला हो जाता है।

प्राचीन काल से यह बीमारी दूध देने वाले पशुओं एवं उनके पशुपालकों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। पशु धन विकास के साथ श्वेत क्रांति की पूर्ण सफलता में अकेले यह बीमारी सबसे बड़ी बाधक है। इस बीमारी से पूरे भारत में प्रतिवर्ष करोड़ों रूपयों का नुकसान होता है, जो अंतत: पशुपालकों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है।

लक्षण – थनैला रोग से ग्रसित पशु का दूध (बाएँ) तथा सामान्यत: (रोगरहित) पशु का दूध (दाएँ)। अलाक्षणिक या उपलाक्षणिक प्रकार के रोग में थन व दूध बिल्कुल सामान्य प्रतीत होते हैं लेकिन प्रयोगशाला में दूध की जाँच द्वारा रोग का निदान किया जा सकता है। लाक्षणिक रोग में जहाँ कुछ पशुओं में केवल दूध में मवाद/छिछड़ें या खून आदि आता है तथा थन लगभग सामान्य प्रतीत होता है वही कुछ पशुओं के थन में सूजन या कड़ापन/गर्मी के साथ-साथ दूध असामान्य पाया जाता है। कुछ असामान्य प्रकार के रोग में थन सड़ कर गिर जाता है। ज्यादातर पशुओं में बुखार आदि नहीं होता। रोग का उपचार समय पर न कराने से थन की सामान्य सूजन बढ़ कर अपरिवर्तनीय हो जाती है और थन लकड़ी की तरह कड़ा हो जाता है। इस अवस्था के बाद थन से दूध आना स्थाई रुप से बंद हो जाता है। सामान्यत: प्रारम्भ में एक या दो थन प्रभावित होते हैं जो कि बाद में अन्य थनों में भी रोग फैल जाता है। कुछ पशुओं में दूध का स्वाद बदल कर नमकीन हो जाता है।

इस अदृश्य प्रकार की बीमारी को समय रहते पहचानने के लिए निम्न प्रकार के उपाय किए जा सकते हैं।

1. पी.एच. पेपर द्वारा दूध की समय-समय पर जाँच या संदेह की स्थिति में विस्तृत जाँच।

2. कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस सोल्यूशन के माध्यम से जाँच।

3. संदेह की स्थिति में दूध कल्चर एवं सेन्सीटिवीटी जाँच।

इसके अलावा पशुओं का उचित रखरखाव, थन की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली औषधियों का प्रयोग एवं रोग का समय पर उचित ईलाज करना श्रेयस्कर है।

उपचार - रोग का सफल उपचार प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही संभव है अन्यथा रोग के बढ़ जाने पर थन बचा पाना कठिन हो जाता है। इससे बचने के लिए दुधारु पशु के दूध की जाँच समय पर करवाकर जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा उपचार पशु चिकित्सक द्वारा करवाना चाहिए। प्राय: यह औषधियाँ थन में ट्यूब चढ़ाकर तथा साथ ही माँसपेशी में इंजेक्शन द्वारा दी जाती है।थन में ट्यूब चढ़ाकर उपचार के दौरान पशु का दूध पीने योग्य नहीं होता। अत: अंतिम ट्यूब चढ़ने के 48 घंटे के बाद तक का दूध प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि उपचार पूर्णरुपेण किया जाये, बीच में न छोड़ें। इसके अतिरिक्त यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि (कम से कम) वर्तमान ब्यांत में पशु उपचार के बाद पुन: सामान्य पूरा दूध देने लग जाएगा।

थनैला बीमारी की रोकथाम प्रभावी ढंग से करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. दुधारू पशुओं के रहने के स्थान की नियमित सफाई जरुरी है। फिनाईल के घोल तथा अमोनिया कंपाउन्ड का छिड़काव करना चाहिए।
2. दूध दुहने के पश्चात् थन की यथोचिथ सफाई के लिए लाल पोटाश या सेवलोन का प्रयोग किया जा सकता है।
3. दुधारु पशुओं में दूध बन्द होने की स्थिति में ड्राई थैरेपी द्वारा उचित ईलाज करवाना चाहिए।
4. थनैला होने पर तुरन्त पशु चिकित्सक की सलाह से उचित ईलाज करवाना चाहिए।
5. दूध की दुहाई निश्चित अन्तराल पर की जाए। थनैला बीमारी से आर्थिक क्षति का मूल्यांकन करने के क्रम में एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आता है, जिसमें यह देखा गया है कि प्रत्यक्ष रुप में यह बीमारी जितना नुकसान करती है, उससे कहीं ज्यादा अप्रत्यक्ष रुप में पशुपालकों को आर्थिक नुकसान पहुँचाता है।

कभी-कभी थनैला रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं परन्तु दूध की कमी, दूध की गुणवत्ता में ह्रास एवं सुखने के पश्चात् (ड्राई काउ) थन आंशिक या पूर्णरुप से क्षति हो जाता है, जो अगले ब्यांत के प्रारंभ में प्रकट होती है।

रोग से बचाव/रोकथाम

1. पशुओं के बाँधे जाने वाले स्थान/बैठने के स्थान व दूध दुहने के स्थान की सफाई का विशेष ध्यान रखें।
2. दूध दुहने की तकनीक सही होनी चाहिए जिससे थन को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे।
3. थन में किसी प्रकार की चोट (मामूली खरोंच भी) का समुचित उपचार तुरन्त करायें।
4. थन का उपचार दुहने से पहले व बाद में दवा के घोल में (पोटेशियम परमैगनेट 1-1000, या क्लोरहेक्सिडीन 0.5 प्रतिशत) डुबोकर करें।
5. दूध की धार कभी भी फर्श पर न मारें।
6. समय-समय पर दूध की जाँच (काले बर्तन पर धार देकर) या प्रयोगशाला में करवाते रहें।
7. शुष्क पशु उपचार भी ब्याने के बाद थनैला रोग होने की संभावना लगभग समाप्त कर देता है। इसके लिए पशु चिकित्सक से संपर्क करें।
8. रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें तथा उन्हें दुहने वाले भी अलग हों। अगर ऐसा सम्भव न हो तो रोगी पशु सबसे अंत में दुहें।

'हे' के रूप में हरा चारा संरक्षण

अनिका मलिक[1], अनीता दलाल[2], सरिता[1] एवं कमलदीप[3]

[1]पशु पशुपालन विस्तार शिक्षा विभाग, [2]पशु सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, [3]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं में विशेषकर दूध देने वाले पशुओं के आहार में हरे चारे का विशेष महत्व होता है। हरा चारा सुपाच्य एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। परन्तु प्राय: यह देखा गया है कि हरा चारा वर्षा ऋतु में ही अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है जबकि ग्रीष्म ऋतु में हरे चारे का अभाव हो जाता है। जब हरा चारा आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है, तो उसका संरक्षण 'हे' व साइलेज के रुप में किया जाता है ताकि संरक्षण किया हुआ हरा चारा ग्रीष्म ऋतु के लिए, व अभाव ग्रस्त क्षेत्रों में प्रयोग किया जा सके। 'हे' सूखा चारा की श्रेणी में व साइलेज रसीला चारा की श्रेणी में आता है।

'हे' यह एक प्रक्रिया है जिसमें हरे चारे की नमी को 15–20 प्रतिशत तक लाकर पत्तियों के पादप एवं सूक्ष्मजीवियों के क्रियाओं का अवरुद्ध करना है ताकि उसमें उपस्थित आवश्यक पौष्टिक तत्व का ह्रास न हो। यह दो प्रकार के होते है (क) फलीदार एवं (ख) बेफलीदार।

'हे' बनाने के लिए हरा चारा चयन करते समय निम्न बातों पर विचार करना आवश्यक होता है।

- खोखले व पतले तने वाली पत्तीदार घास का चयन करना चाहिए।
- घास मुलायम व स्वादिष्ट होनी चाहिए।
- घास में प्रोटीन 7–8 प्रतिशत तथा कैल्शियम 0–5 प्रतिशत होना चाहिए।

'हे' को तैयार करने की विधि

हरे चारे को फूल आने से पहले प्रात: काल ओस हट जाने के बाद उसे काटकर सम्पूर्ण खेत में फैला देना चाहिए। इसके बाद इसे समय–समय पर पलटते रहना चाहिए। धूप और हवा से यह घास धीरे–धीरे सूख जाती है। जब नमी की मात्रा 15 प्रतिशत रह जाए तो इसे ऐसी जगह संचित करें जहाँ पानी न पहुँच सके।

बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ तीन लम्बे तथा पतले लट्ठों को एक तीगोड़िया बनाकर लट्ठ के ऊपरी सिरों को तार से एक जगह बाँधकर इसके आधार को फैलाकर खड़ा कर भूमि पर त्रिभुज बनाकर लट्ठ के मध्य अन्य लट्ठ बाँधकर उस पर घास डालकर सुखाते है। कई जगहों पर तो पशुशाला की टीन की छत पर भी हरी घास सुखाई जा सकती है।

उत्तम 'हे' के गुण

- घास का हरा रंग कभी समाप्त नहीं होता है।
- 'हे' फफूँदी रहित होना चाहिए।
- 'हे' स्वादिष्ट व मुलायम होना चाहिए।
- 'हे' में खरपतवार, धूल व मिट्टी नहीं होनी चाहिए।
- उत्तम 'हे' में पत्तियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती है।
- 'हे' में उस घास की सुगन्ध होनी चाहिए जिससे उसे तैयार किया जाता है।

भारत में स्थिति

भारत के अधिकतर किसान गरीब हैं। कम जमीन होने के कारण पशुओं का चारा भूमि में कम मात्रा में लगाते है। सर्वाधिक मात्रा में हरा चारा वर्षा ऋतु में उपलब्ध होता है, और उस समय धूप व हवा में सुखाना मुश्किल हो जाता है। कृत्रिम रुप से घास सुखाने की प्रक्रिया अधिक महंगी होती है जिस वजह से यहाँ के किसानों ने इसे नहीं अपनाया है।

हरा चारा, पशु स्वास्थ्य एवं दुग्धोत्पादन

अनीता दलाल[1], अनिका मलिक[2], सरिता[2] एवं कमलदीप[3]

[1]पशु सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, [2]पशु विस्तार शिक्षा विभाग एवं [3]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्राय: कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ/गतिशील मस्तिष्क निवास करता है। उसी तरह स्वस्थ पशु ही अत्यधिक उत्पाद दे सकता है। स्वास्थ्य ही मूलभूत ध्येय है जिस पर पशुपालन आधारित है। अपने पशुओं को उत्तम कोटि की श्रेणी में रखने के लिए हमें उनकों संतुलित आहार खिलाना चाहिए जिससे सभी पोषक तत्व उनको मिल सकें।

घास, भूसा व रातिब (दाना) गाय-भैंस का प्रमुख आहार हैं। लाभ के लिए गाय एवं भैंस ज्यादा से ज्यादा दूध दे उसके लिए इनको अच्छा, उचित व पर्याप्त मात्रा में आहार देना चाहिए। हरा घास जहाँ पशु आहार को सौन्दर्य प्रदान करती है वहीं वह गाय के लिए स्वास्थ्यवर्धक व दूध की अच्छी पैदावार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हरे चारे से पशुओं को पोषक तत्व के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में खनिज लवण भी मिल जाते हैं। हरा चारा पशु बहुत ही चाव से खाते हैं और यह सूखे चारे की अपेक्षा शीघ्र पचता है। अगर गाय को पौष्टिकता से भरपूर (फलीदार) हरा चारा दिया जाए तो रातिब देने की जरुरत भी कम हो जाती है। हरी घास रातिब से कही सस्ती है, इसलिए दूध उत्पादन में आने वाली लागत भी कम हो जाती है और लाभ ज्यादा होता है। केवल एक एकड़ की भूमि में हरे चारे की फसल चक्र अपनाकर हम 10 गाय या भैंस को आसानी से पाल सकते हैं।

हरे चारे को मुख्यत: दो तरह से विभाजित किया जा सकता है।

क) हरा बिना फलीदार चारा - यह भी दो तरह का होता है। एक वह जो स्वयं ही उगता है जैसे घास, कास आदि। दूसरा जिसे हम उगाते है जैसे नेपियर, सूडान, गिनी, मक्का, ज्वार, जई आदि। इन सभी को मुख्यत्तर हरी ज्वार, मक्का, जई प्रचूर मात्रा में पशुओं को खिलाया जाता है और अगर फूल आने तक की दशा में काटकर खिलाया जाए तो

इनसे उत्तम मात्रा में कुल पाचक तत्व पशुओं को उपलब्ध होते हैं। इस घास में कुल पाचक तत्व 14-17 प्रतिशत तथा पचने योग्य प्रोटीन 1-1.35 प्रतिशत तक होता है।

ख) हरा फलीदार चार - इस प्रकार के चारे में लूसर्न, बरसीम, मटर, सोयाबीन आदि आते है। यह स्वादिष्ट तो होता ही है पचने वाला व अच्छे मात्रा में प्राचक प्रोटीन से भी भरपूर होता है। इससे पशु अपने निर्वाह के अतिरिक्त काफी हद तक उत्पादन आवश्यकता को भी पूरा करता है। इसमें कुल पाचक तत्व 10-12 प्रतिशत तथा पाचक प्रोटीन 2.25-3.25 प्रतिशत तक होते हैं। अगर यह फलीदार हरा चारा पर्याप्त मात्रा में गाय व भैंस को दिया जाए तो हमारा पशु 8 कि.ग्रा. दूध बिना रातिब के ही दे देगा।

प्राय: 8 कि.ग्रा. प्रतिदिन की औसत से हमें अधिक दूध देने वाले पशुओं को रातिब देना पड़ता है और अगर हम

पर्याप्त मात्रा में हरा चारा बेफलीदार सूखा चारा जैसे धान का भूसा, गेहूँ का भूसा या ज्वार की कड़बी को मिलाकर दें तो ना केवल पशु का पेट आराम से भरेगा, उत्पादन क्षमता में भी बढ़ोत्तरी होगी और दाने की जरुरत भी कम होगी।

हम भिन्न-भिन्न तरीकों से रातिब का मिश्रण तैयार कर रातिब पर आने वाला खर्च कम कर सकते हैं जैसे :-

जौ	30%
चोकर	30%
मूँगफली की खल	20%
चना	20%

मक्का का दर्रा	50%
कपास की खल	30%
चोकर	20%

मक्का	30%
चना	30%
कपास की खल	20%
धान की कुंड़ी	10%
मूँगफली की खल	10%

सरसों या तीसी की खल	30%
चना का दर्रा	20%
चोकर	50%

400 कि.ग्रा. की गाय के लिए आहार सारणी

चारा	दूध उत्पादन क्षमता															
	5 कि.ग्रा.				5-8 कि.ग्रा.				8-10 कि.ग्रा.				10-15 कि.ग्रा.			
1. फलीदार हरा चारा	I	II	III	IV	I	II	III	IV	I	II	III	IV	I	II	III	IV
लूसर्न/बरसीम मात्रा	26	X	X	X	48	X	X	X	60	X	X	X	60	X	X	X
2. बेफलीदार हरा चारा																
क) मकई/ज्वार	X	50	X	X	X	56	X	X	X	X	35	X	X	X	35	X
ख) जई	X	X	35	X	X	X	40	X	X	50	X	X	X	50	X	X
3. सूखा बेफलीदार चारा ज्वार की कड़बी/गेहूँ का भूसा	X	X	4	3-8	X	X	X	2-8	X	X	X	X	X	X	X	X
4. रातिब	X	X	X	3-5	X	1	X	4-5	2	3	4	X	4	4	5-6	X

450 कि.ग्रा. की भैंस की आहार सारणी

चारा	दूध उत्पादन क्षमता															
	5 कि.ग्रा.				5-8 कि.ग्रा.				8-10 कि.ग्रा.				10-15 कि.ग्रा.			
1. फलीदार हरा चारा	I	II	III	IV	I	II	III	IV	I	II	III	IV	I	II	III	IV
लूसर्न/बरसीम मात्रा	30	X	X	X	55	X	X	X	60	X	X	X	60	X	X	X
2. बेफलीदार हरा चारा																
क) मकई/ज्वार	X	60	X	X	X	56	X	X	X	X	40	X	X	X	30	X
ख) जई	X	X	40	X	X	X	45	X	X	50	X	X	X	50	X	X
3. सूखा बेफलीदार चारा ज्वार की कड़बी/गेहूँ का भूसा	X	X	4	3-8	X	X	X	2-8	X	X	X	X	X	X	X	X
4. रातिब	X	X	X	3-5	X	1	X	4-5	2	3	4	X	4	4	5-6	X

तो उपरोक्त आहार सारणी अपने पशुओं के लिए अपनाकर हम जहाँ हम अपने लाभ को बढ़ा सकते हैं वही पशुओं के स्वास्थ्य व उत्पादन क्षमता को उत्तम दर तक ले जा सकते हैं। हरा चारा रुचिकर, सुपाच्य एवं पौष्टिक है, शीघ्र हजम होने वाला है और हमारे पशुओं को ना केवल स्वस्थ रखता है जबकि बहुत से संक्रामक रोगों से बचाव की शक्ति भी प्रदान करता है। तो फिर क्यों ना हम अपने खेत खलिहानों में अत्यधिक हरा चारा लगाएँ और अपने पशुओं को स्वस्थ रखें और उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाते हुए अपना लाभ बढ़ाएँ।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. टोल-फ्री हेल्पलाईन सेवा (1800-180-1184)
3. नि:शुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री

   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

साइलेज के रुप में हरा चारा संरक्षण, विधि एवं उपयोगिता

कमलदीप[1], गौरव चराया[2], अनिका मलिक[3] एवं रचना[4]

[1]पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [3]पशु विस्तार शिक्षा विभाग एवं डेयरी [4]व्यवसाय प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्राय: देखा गया है कि सिंचित भागों को छोड़कर अन्य स्थानों पर केवल वर्षा ऋतु में अधिक मात्रा में चारा उपलब्ध होता है, जबकि ग्रीष्म ऋतु में हरे चारे का अभाव होता है। पशुओं में विशेषकर दूध देने वाले पशुओं के आहार में हरे चारे का विशेष महत्व होता है। हरा चारा सुपाच्य एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है इसलिए हरा चारा जब आवश्यकता से अधिक हो तो उसे संरक्षण विधि से 'हे' और 'साइलेज' बनाकर ग्रीष्म ऋतु के लिए या सूखा ग्रस्त क्षेत्रों के लिए भण्ड़ार किया जा सकता है। 'हे' सूखा चारा कि श्रेणी में तथा 'साइलेज' रसीला चारा की श्रेणी में आता है।

हरे चारे को रसीला अवस्था में भूमि के अन्दर या विशेष प्रकार के टावर में दबा कर इस प्रकार रखते हैं कि चारे के बीच हवा ना रह सके, इससे चारा लम्बे समय तक संरक्षित रहता है। इसी रसीले चारे को साइलेज कहते है।

साइलेज बनाने के लाभ

1. हरा चारा अधिक समय तक संरक्षित किया जा सकता है।
2. वर्षा ऋतु में उपलब्ध अधिक चारा को 'हे' के बदले साइलेज बनाना आसान है।
3. कम खर्च पर उच्च कोटि का हरा चारा उपलब्ध होता है।
4. यह अधिक पौष्टिक और सुपाच्य होता है।
5. साइलेज खिलाकर रातिब की कमी को पूरा किया जा सकता है।
6. साइलेज खिलाकर रातिब की कमी को पूरा किया जा सकता है।
7. 'हे' की अपेक्षा साइलेज कम जगह लेता है। इसलिए भण्ड़ार करना आसान है।

साइलेज बनाने की विधि

घास में फूल लगने की अवस्था में सुबह ओस घटने के बाद काटकर दोपहर तक खेत में फैलाकर छोड़ देते है जिससे नमी में कुछ कमी आ जाए। दोपहर के बाद इस चारे का बंडल बाँधकर क्रम में लगा लिया जाता है। साइलों में सर्वप्रथम कुछ घास बिछायी जाती है, फिर चारे की कुट्टी काटने के

बाद साइलों में खूब दबाकर रखते हैं ताकि चारे के बीच हवा न रह जाए। फलीदार घास में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होती है। अत: चारा भरायी के समय शोरा या खनिज अम्ल का छिड़काव करना पड़ता है। चारे को जमीन से डेढ़ या दो फीट ऊँचा भरते है क्योंकि बाद में घास का स्तर नीचा हो जाता है। अन्त में साइलों में कुछ घास को काटकर इसे मिट्टी एवं गोबर से लेप कर बन्द कर देते है। 50-60 दिनों तक गड्ढ़े को बन्द रखने के पश्चात् साइलेज बन जाता है। अब आवश्यकता पड़ने पर किनारे से खोलकर आवश्यकता अनुसार साइलेज निकालकर पशु को खिलाते हैं। साइलेज के लिए जब हरी घास काटकर साइलों में भरकर दबाया जाता है तो पौधों की जीवित कोशिका श्वासोच्छवास क्रिया करती है। इस क्रिया में कोशिका साइलों में उपस्थित

ऑक्सीजन को ग्रहण करके कार्बन-डाइऑक्साइड मुक्त करती है। लगभग 5 घंटे में साइलों में ऑक्सीजन ग्रहण हो जाता है तथा 70-80 प्रतिशत कार्बन-डाइऑक्साइड बन जाता है। इस परिस्थिति में फफूँद उत्पन्न नहीं हो पाता है तथा ऑक्सीजन के अभाव या हवा के अनुपस्थिति में बढ़ने वाले जीवाणु की संख्या बढ़ती है जो चारा में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया कर दुग्धाम्ल उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त एसीटिक एसीड तथा अल्कोहल बनता है। उपरोक्त अम्ल तथा अल्कोहल के कारण चारा को सड़ाने वाले जीवाणु अपनी वृद्धि नहीं कर पाते और चारा लम्बे समय तक सुरक्षित रहता है।

साइलेज बनाने में सावधानियाँ

1. साइलों में चारा काटकर बढ़िया से दबाकर रखना चाहिए ताकि चारे के बीच वायु कम से कम हो।
2. साइलों के निर्माण में पूरा ध्यान रहे कि उसमें कहीं से भी वायु प्रवेश न हो।
3. यदि चारे में कार्बोहाइड्रेट कम हो तो चारा साइलों में भरते समय शोरा एवं खनिज अम्ल की आवश्यकता अनुसार छिड़काव करें।
4. चारा में अधिक कार्बोहाइड्रेट हो तो साइलेज बनाने की अनुशंसा नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए ज्वार और मक्का में फूल आने की अवस्था में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा साइलेज बनाने के अनुकूल होता है। रंग एवं स्वाद के अनुसार साइलेज निम्न श्रेणी का होता है।

1. हल्की बादामी साइलेज - सर्वोत्तम।
2. हरी साइलेज - उत्तम कोटि।
3. बादामी साइलेज - मध्यम कोटि।
4. खट्टी साइलेज - निम्न कोटि।

Ajay Saxena
98129 23237

Pritam Swami
9416342201

SAXENA PHARMA
Speciality Dog and Cattle Vaccine

All kind of Vety Medicine and Feed Supplements

Ground Floor 21/4 Jain Gali, Inside Nagori Gate, Hisar

गाभिन भैंसों में गर्भकाल के अंतिम तीन माह का प्रबन्धन

ऋचा, सौरभ, अमन कुमार एवं रजनी कुमारी
पशु जैव प्रौद्योगिकी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

लाभकारी पशुपालन व्यवसाय हेतु भैंस को हर 12-13 महीनें बाद ब्याना चाहिए तथा लगभग 10 महीनें तक दूध देना चाहिए। परन्तु व्यवहारिक रुप में दो ब्यातों के बीच का अन्तर 410-470 दिन तक होता है तथा यह आहार और रख-रखाव पर भी निर्भर करता है। भैंस का टलने का समय 60 से 90 दिन तक ही होना चाहिए। इस दौरान पशु दूध उत्पादन के समय ह्रास हुए पोषक तत्वों की भरपाई तथा गर्भ में पलने वाले बच्चे के पोषण की जरुरत पूरी करते हैं। गर्भकाल के अन्तिम तीन मास में अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इस काल में भैंस का वजन 20 से 30 किलो तक बढ़ जाता है। इस काल में संचित पोषक तत्वों से ब्याने के बाद के दूध उत्पादन में सहायता मिलती है। गर्भकाल के अन्तिम तीन महीनों में नियमित आहार के अतिरिक्त 2 किलो ऊर्जायुक्त दाना मिश्रण देना चाहिए जिससे गर्भ में पल रहे बच्चे को उचित पोषण मिल सके। ब्याने से पहले मिले इन अतिरिक्त पोषक तत्वों को पशु अपने शरीर में जमा कर लेता है तथा ब्याने के पश्चात् दूध उत्पादन में उपयोग करता है।

गर्भकाल के अन्तिम तीन माह में देखभाल

- इस अवस्था में भैंस को दौड़ने या अधिक चलने से बचाइये और चरने के लिए दूर भी नहीं भेजना चाहिए।
- भैंस कहीं फिसल न जाये अत: उसे फिसलने वाली जगहों पर नहीं जाने दीजिए और चिकने फर्श पर घास-फूस आदि बिछाकर रखिये।

- गर्भवती भैंस को दूसरे अन्य पशुओं से लड़ने मत दीजिए।
- भैंस के आहार में एक किलोग्राम अतिरिक्त दाना देना आवश्यक है। दाने में एक प्रतिशत नमक व नमक रहित खनिज लवण भी दीजिए। अगर हो सके तो एक प्रतिशत हड्डी का चूरा भी अलग से दें।
- पीने के लिए स्वच्छ व ताजा पानी हर समय उपलब्ध करवाएँ।
- गर्मी के मौसम में भैंस को दिन में 2-3 बार नहलाएँ व तेज धूप से बचाएँ। भैंस के बाँधने की जगह अगले पैरों के तरफ नीची तथा पिछले पैरों की तरफ थोड़ी ऊँची होनी चाहिये। यदि बाँधने की जगह इसके उलट है तो गाभिन भैंस में शरीर दिखाने की संभावना बढ़ जाती है।

- गर्भकाल के आखिरी महीनों में भैंस को तालाब में लेटने के लिए भी नहीं ले जाना चाहिए। जल्दी ब्याने वाली भैंस का आवास अलग होना चाहिए तथा इसके लिए उसे 100–120 वर्ग फुट ढका क्षेत्र तथा 180–200 वर्ग फुट खुला क्षेत्र जरुर देना चाहिए।

गर्भकाल के अन्तिम माह में प्रबन्धन

- यदि भैंस दूध में है तो भैंस का दोहन बन्द कीजिए। ब्याने से 2 महीने पहले भैंसों का दूध निकालना बन्द कर देना चाहिए नहीं तो बच्चे कमजोर पैदा होंगें, अगले ब्यांत में पशु कम दूध देगा तथा भैंसों की प्रजनन क्षमता भी प्रभावित होगी।
- भैंस को प्रसव तक 2–3 किलोग्राम दाना प्रतिदिन दीजिए यदि उसे कब्ज रहता हो तो अलसी का तेल पिलाएँ।
- ब्याने के 20 से 30 दिन पहले भैंस को दस्तावर आहार जैसे गेहूँ का चोकर, अलसी की खल आदि दाने में खिलायें। यदि हरा चारा प्रचूर मात्रा में उपलब्ध हो तो इस मिश्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- गाभिन भैंस को यथासम्भव अन्य पशुओं से अलग रखिये ताकि उसकी देखरेख भली–भांति हो सके। गाभिन भैंस को उन पशुओं से दूर रखना उचित होगा, जिनका गर्भ गिर गया हो।
- प्रथम बार ब्याने वाली भैंस के शरीर पर हाथ फेरते रहना चाहिए तथा प्यार करना चाहिए।

भैंसों में प्रसव से पूर्व के लक्षण

- प्रसव के 2–3 दिन पूर्व पशु कुछ सुस्त हो जाता है तथा दूसरे पशुओं से अलग रहने लगता है।
- पशु आहार लेना कम कर देता है।
- प्रसव से पूर्व उसके पेट की माँसपेशियाँ सिकुड़ने या बढ़ने लगती हैं और पशु को पीड़ा शुरु हो जाती है।
- योनिद्वार में सूजन आ जाती है तथा योनि से कुछ लेसदार पदार्थ आने लगता है।
- पशु का अयन सख्त हो जाता है। पशु के कुल्हे की हड्डी वाले हिस्से के पास 2–3 इंच का गड्ढा पड़ जाता है।
- पशु बार–बार पेशाब करता है।
- पशु अगले पैरों से मिट्टी कुरेदने लगता है।

प्रसव काल में भैंस की देखभाल

- जहाँ तक हो सके प्रसव के समय पशु के आसपास किसी प्रकार का शोर नहीं होने दीजिए और न ही पशु के पास अनावश्यक किसी को जाने दीजिए।
- जल थैली दिखने के एक घंटे बाद तक यदि बच्चा बाहर न आए तो बच्चे को निकालने में पशु की सहायता हेतु अनुभवी एवं योग्य पशु सहायक की मदद लें।
- बच्चे के बाहर आ जाने पर उसे भैंस द्वारा चाटने दीजिए ताकि वह सूख जाये। आवश्यकता हो तो बच्चे को साफ और नरम तौलिये या कपड़े से रगड़ कर पौंछ

दीजिए ताकि उसके शरीर पर लगा सारा श्लेष्मा साफ हो जाये।

- प्रसव उपरान्त में जेर गिरने का पूरा ध्यान रखिये और जब तक यह गिर न जाये भैंस को खाने को कुछ मत दीजिए। सामान्यत: जेर निष्कासन में 6 से 8 घंटे का समय लगता है। जेर न गिरने पर पशु चिकित्सक की सहायता लीजिए।
- प्रसव के बाद जननांगों के बाहरी भाग, कोख और पूँछ को गुनगुने साफ पानी से, जिसमें पोटेशियम परमैंगनेट के कुछ दाने पड़े हों या नीम की पत्ती के उबले हुए पानी से धो दीजिए। इसके पश्चात् पशु को गरम पेय जिसमें चोकर (500 ग्राम) या नमक पड़ा हो पीने के लिये दीजिए। यह पेय भैंस को दो दिन तक प्रात: एवं सांय देते रहिए।
- भैंस को एक-दो दिन तक गुड़ व जौ का दलिया भी खिलाना वांछनीय होगा। दो दिन के बाद धीरे-धीरे चोकर की मात्रा बढ़ाते हुए चूनी व खली आदि मिलाकर बना हुआ दाना थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खिलाना प्रारम्भ करें। 15-20 दिन बाद दूध की मात्रा के अनुसार दाना देना प्रारम्भ कर दें।

प्रसव के पश्चात भैंसों की देखभाल - ब्याने के पश्चात् भैंस ही नहीं बल्कि कटड़ें-कटड़ी की देखरेख भी ठीक प्रकार से करें। थोड़ी सी असावधानी से पशुओं में जनन सम्बंधी रोग उत्पन्न हो सकते हैं। प्रसव पश्चात् भैंस की देखरेख अच्छी तरह से होनी चाहिए, ताकि किसी भी प्रकार का जनन रोग उत्पन्न न हो, दूध देने की क्षमता बनी रहे तथा पशु समय पर गर्मी में आकर गाभिन हो। आमतौर पर पशु को ब्याने के पश्चात् 2-6 घंटे के अन्दर जेर गिरा देनी चाहिए। किन्तु कमजोर पशुओं में या बच्चेदानी में रोग होने और प्रसव के समय अधिक पीड़ा के कारण जेर बच्चेदानी से अलग नहीं हो पाती और बच्चेदानी के अन्दर ही रह जाती है। कभी-कभी जनन अंगों में किसी रुकावट के कारण जेर शरीर से बाहर नहीं गिरती और बच्चेदानी में ही सड़ती रहती है। यह विकार विटामिन-ए तथा आयोडीन की कमी के कारण भी हो सकता है।

यदि पशु ब्याने के पश्चात् समय से जेर नहीं गिराए तो घबराना नहीं चाहिए और न ही किसी अनुभवहीन व्यक्ति से जेर बाहर निकलवानी चाहिए। इससे बच्चेदानी में जेर के टूटने से रक्त भी बह सकता है और हाथ डालने के कारण विषाणु बाहर से बच्चेदानी में प्रवेश कर सकते हैं जिससे बच्चेदानी में सूजन और मवाद पड़ सकती है। इस कारण पशुओं का तावचक्र अनियमित होने के साथ-साथ पशु समय पर ताव में भी नहीं आते। ऐसे में पशुओं में गर्भधारण करने में बहुत समय लग जाता है और पशु बांझ भी हो सकता है। कुछ पशुओं में जेर बच्चेदानी में ही पड़े रहकर सड़ने लगती है और बदबूदार मवाद या गन्दा रक्त योनिद्वार से बाहर आने लगता है। कुछ समय बाद इसका जहर बच्चेदानी से सारे शरीर में फैल जाता है और पशु आहार लेना बन्द कर देता है। पशु सुस्त हो जाता है तथा शरीर भार तथा दूध उत्पादन कम होने लगता है। इस विकार के कारण 1-2 प्रतिशत पशु मर भी जाते हैं। जेर समय पर बाहर न गिरने तथा टूटने पर मान्यता प्राप्त पशु चिकित्सक द्वारा ही जेर निकलवाएँ।

पशुप्रजनन में कृत्रिम गर्भाधान का महत्व

रजनी कुमारी, त्रिलोक नन्दा एवं अमन कुमार

पशु जैव प्रौद्योगिकी विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन व्यवसाय की सफलता उचित पशु प्रजनन प्रबंधन पर निर्भर करती है। पशुपालन व्यवसाय में होने वाले आर्थिक नुकसानों का मुख्य कारण भी पशु प्रजनन संबंधी समस्याएँ होती हैं। ऐसे में पशु उत्पादन में वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग से इन समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान पद्धति एक सहायक प्रजनन तकनीक है, जिसका पशु प्रजनन एवं नस्ल सुधार में बहुत बड़ा योगदान है।

कृत्रिम गर्भाधान का महत्व

1. एक अच्छी नस्ल के साँड का नस्ल सुधारने के लिए ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जा सकता है।
2. छोटे किसान जिनके पास 5 से 10 पशु हैं, उनके लिए साँड रखना आर्थिक रुप से महँगा होता है। उनके लिए, कम दाम में उत्तम प्रजनन सुविधा, केवल कृत्रिम गर्भाधान के रुप में की जा सकती है।
3. जो पशु, कृत्रिम गर्भाधान के लिए लाया जाता है, उसका विशेष रुप से परीक्षण किया जाता है, जिससे प्रजनन संबंधी रोगों का इलाज तथा उपचार, सही ढंग से किया जा सकता है।
4. कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा सैंकड़ों मील दूर तक उत्तम साँड के प्रजनन का लाभ उठाया जा सकता है।
5. प्रजनन संबंधी अनेक बीमारियों जैसे की गर्भपात, ब्रूसेलोसिस तथा ट्राइकोमोनीएसीस आदि पर सफलतापूर्वक नियंत्रण कृत्रिम गर्भाधान द्वारा संभव है।
6. कुदरती/प्राकृतिक सेवा द्वारा एक साँड द्वारा एक वर्ष में 100 से 120 पशुओं में प्रजनन संभव हो सकता है। जबकि कृत्रिम गर्भाधान तकनीक द्वारा उच्च कोटि के साँड द्वारा हजारों की संख्या में पशुओं में प्रजनन संभव है। अत: कृत्रिम गर्भाधान से शीघ्र पशुधन विकास संभव है।
7. कृत्रिम गर्भाधान तकनीक द्वारा बेहतर रिकार्ड रखने में मदद मिलती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से, पहली बार 1784 में स्पैलैन्ज़नी ने कुतिया में सफल गर्भाधान किया था। धीरे-धीरे विश्व भर में विभिन्न प्रजातियों में विभिन्न शोधकर्ताओं ने इसे आगे बढ़ाया। फ्रोजन वीर्य का उपयोग करके पोल्ज एवं उनके साथियों ने 1949 में, कृत्रिम गर्भाधान के क्षेत्र में क्रांति ला दी। फ्रोजन वीर्य दस से पंद्रह वर्षों तक प्रवाही नाइट्रोजन गैस में सुरक्षित रखा जा सकता है एवं इस प्रकार श्रेष्ठ साँडों के वीर्य का उपयोग उनके मरणोपरान्त भी हो सकता है। फ्रोजन वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या लगभग बराबर रहती है। फ्रोजन वीर्य के उपयोग से साँड/बाछा का संतान परीक्षण हो सकता है इसलिए पशु विकास में फ्रोजन वीर्य का उल्लेखनीय योगदान है। देश-विदेश में उच्च कोटि के साँड की अनुपलब्धता की परिस्थिति में श्रेष्ठ साँडों के फ्रोज़न वीर्य का उपयोग किया जा सकता है। सफल कृत्रिम गर्भाधान के मुख्य स्तंभ है - वैज्ञानिक पद्धति से वीर्य का एकत्रीकरण, जाँच, मूल्याँकन, संरक्षण एवं उचित परिवहन। गर्मी में आई योग्य मादा का चुनाव भी सफल कृत्रिम गर्भाधान के लिए आवश्यक है।

हाल ही में, कैपर एवं उनके साथियों ने अपने शोध में बताया कि कृत्रिम गर्भाधान विधि के उपयोग परिणामस्वरूप कार्बन प्रतिसर्जन की मात्रा प्रति बीलियन लीटर के दूध उत्पादन पर घटी है। 1944 में होने वाले कार्बन उत्पादन की मात्रा की तुलना में यह महज़ 37 है।

कृत्रिम गर्भाधान ग्लोबल वार्मिंग जैसी गंभीर समस्याओं से निपटने में भी सक्षम है। निम्न गर्भाधारण दर जो कि लगभग 35-40 है, इस क्रांतिकारी तकनीक के प्रभावी असर के लिए गतिरोधक है।

निम्न गर्भाधारण के मुख्य कारण हैं :- अनुकुल प्रबंधन न होना एवं तकनीकी शैली में कमी।

सफल कृत्रिम गर्भाधान के लिए किसानों तक इस विधि का वैज्ञानिक रुप में पहुँचना अत्यंत आवश्यक है।

ग्रामीण परीपेक्ष में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक को सफल बनाने के लिए पशुपालकों के लिए ध्यान में रखने योग्य बातें -

1. गर्मी में आए हुए मादा पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान 14-16 घंटे के दौरान होना चाहिए।
2. कृत्रिम गर्भाधान के बाद मादा पशुओं को साँड से अलग रखना चाहिए एवं दो दिनों तक चरने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए जिससे दूसरा कोई साँड संपर्क में ना आ सके।
3. कृत्रिम गर्भाधान की तारीख नोट कर रखना चाहिए तथा 20 से 21 दिन के बाद पशु गर्मी में आती है या नहीं, इसका खास ध्यान रखना चाहिए। यदि अगले

20 से 21 दिन बाद पशु गर्मी में आता है, तो फिर से कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए।

4. जो पशु कृत्रिम गर्भाधान होने के बाद, 20 से 24 दिनों में पुन: गर्मी में नहीं आता, वैसे पशुओं को दो से तीन महीने बाद गर्भाधान के लिए परीक्षण करवाना चाहिए। तो इससे यह सुनिश्चित हो जाएगा कि पशु गाभिन है, या नहीं।
5. जिस पशु में गर्भाधान हो चुका है, उसकी उचित देखभाल, पालन-पोषण तथा जरुरी रखरखाव करना चाहिए।
6. जिस पशु में गर्भाधान नहीं हुआ है, एवं जो पशु गर्मी में नहीं आते, वैसे पशुओं को गर्मी में लाने के लिए जरुरी इलाज़ पशु चिकित्सक द्वारा करवाना चाहिए।
7. जहाँ कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा उपलब्ध है, वहाँ के गाँवों में साँड तथा दो साल से ऊपर के बाछों में बंध्याकरण कराना चाहिए।

कृत्रिम गर्भाधान को सफल बनाने के लिए पशुपालकों एवं पशु केन्द्र पर तैनात कर्मचारियों के बीच परस्पर बातचीत, घनिष्ठ संबंध एवं संपर्क कायम रहना अत्यंत आवश्यक है।

पशुओं में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक

कमलदीप[1], अनिका मलिक[2], प्रियंका[3] एवं गौरव चराया[4]

[1]पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]पशु विस्तार शिक्षा विभाग, [3]प्रबंधन अध्ययन विभाग, [4]पशु चिकित्सा विभाग

[3]भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर, सोनीपत

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में पशुओं की संख्या विश्व में किसी भी देश से अधिक है, तथा दुग्ध उत्पादन की स्थिति विश्व में प्रथम होते हुए भी अत्यंत चिंताजनक है। भारत में प्रति पशु दुग्ध उत्पादन कम होने के कारण दूध के मूल्य में वृद्धि होने के उपरान्त भी उत्पादन लागत के सापेक्ष्य आर्थिक लाभ कम है। पशुपालक के आर्थिक हित के लिए एवं प्रति पशु दुग्ध उत्पादन विश्व स्तर पर लाने के लिए जानी पहचानी नस्ल एवं उच्च अनुवांशिकी गुणों वाली संतति को उत्पन्न करना है। इसके लिए राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय ने पशु नस्ल सुधार क्षेत्र में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक को सफलतापूर्ण संचालित करने की पहल की है।

भ्रूण प्रत्यारोपण क्या है?

अति विशिष्ट नस्ल की गायों को हारमोन्स की सूई लगाकर बहुडीक्ब क्षरण द्वारा एक से अधिक अण्डें तैयार किये जाते है। इन अंडों को दाता गाय के गर्भाशय में अति विशिष्ट साँड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान या नैसर्गिक विधि द्वारा निबेचन कराया जाता है। इसके पश्चात् भ्रूणों का संग्रह कर अन्य पालक गाय में प्रत्यारोपण कर संतति प्राप्त की जाती है। इस प्रक्रिया को भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक कहते हैं।

1. **भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी से लाभ** – एक गाय से उसके जीवन काल में 5–10 बच्चे ही उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक द्वारा एक गाय से औसतन 5–8 भ्रूण प्राप्त कर उन्हें अन्य पालतू गाय में प्रत्यारोपित कर एक वर्ष में 5 से 10 उन्नतशील नस्ल की संततियाँ प्राप्त की जा सकती है।
2. इस विधि द्वारा जुड़वा बछड़ें या बछियाँ प्राप्त किये जा सकते है।
3. कम आयु के नर व मादा पशु का चयन कर उनसे संततियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।
4. भ्रूण का एक शहर, राज्य या देश से दूसरे शहर, राज्य या देश में ले जाना आसान है।
5. भ्रूण को हिमीकृत कर वर्षो तक सुरक्षित रखा जा सकता है।
6. साँड में अनुवांशिक गुण व दोषों की पहचान की जा सकती है।
7. गाय का शीघ्र संतति परीक्षण किया जा सकता है।
8. इस विधि के द्वारा संक्रामक रोगों की रोकथाम आसानी से की जा सकती है।
9. इस विधि से रोग–रोधक क्षमता वाले संतति उत्पन्न की जा सकती है।
10. पशुओं में बाँझपन की समस्या का समाधान आसानी से हो जाता है।

11. इस विधि से संकर नस्ल के पशु बाजार के अनुरुप उत्पन्न किये जा सकते है।

12. चयनित पशुओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि की जा सकता है।

13. उम्रदराज पशु या बूचड़खाने में भेजी जाने वाली उच्च गुणवत्ता वाली मादा पशु से असाइट संकलित कर उन्हें परखनली विधि से निषेचित कर भ्रूण प्राप्त कर भ्रूण प्रत्यारोपित कर संतति प्राप्त किया जा सकता है।

भ्रूण प्रत्यारोपण की प्रक्रिया

1. दाता तथा पालतू गायों का चयन वांछित तथा पालतू गायों पर दाता गाय का चयन किया जा सकता है।

2. पालतू गाय स्वस्थ, सामान्य प्रजनन अंगों तथा सामान्य ऋतुचक्र वाली चयन करनी चाहिए।

3. दाता गाय को गोनैडोट्रोपीन हारमोन के द्वारा बहुडिम्ब क्षरण से एक से अधिक अण्ड़े उत्पन्न करवाएँ जाते हैं।

4. बहुडिम्ब क्षरण आरम्भ होने के 5 वें दिन 12 घंटों के अन्तराल पर 2–3 बार कृत्रिम गर्भाधान या नैसर्गिक विधि द्वारा अंडों को निबेचन कराया जाता है।

5. दाता गाय के ऋतुचक्र में आने के 7 दिन बाद गर्भाशय से भ्रूण निकाल लिए जाते है।

6. संकलित भ्रूण की सूक्ष्मदर्शी यंत्र से जाँच कर सामान्य भ्रूण को अलग कर बफर मीडिया में संरक्षित किया जाता है।

7. पालतू गाय जिसका मदकाल दाता गाय के साथ आया हो उसमें भ्रूण का प्रत्यारोपण शैल्य क्रिया द्वारा किया जाता है।

8. यदि पालतू गाय तुरन्त उपलब्ध नहीं हो या प्रत्यारोपण तुरन्त नहीं करना हो तो भ्रूण की हिमीकृत कर तरल नेत्रजन में अनिश्चित काल के लिए संचय किया जा सकता है।

भ्रूण प्रत्यारोपण की सीमा

1. निपुण पशु चिकित्सक एवं विशेष उपकरण की आवश्यकता होती है।

2. दाता गाय से भ्रूण प्राप्त करना खर्चीला एवं जटिल प्रक्रिया है।

3. पालतू गाय के वृद्धि एवं चारे पर खर्च करना पड़ता है।

4. दाता एवं पालतू गाय के लिए उच्च मानक प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

पशु पालक भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक का लाभ लेकर अनुवांशिक गुणों वाले पशु से अतिविशिष्ट अनुवांशिक गुणों वाले संतति प्राप्त कर कम लागत में गौपालन या भैंस पालन व्यवसाय आरम्भ कर सकते हैं।

पशु प्रजनन सम्बंधित समस्याएँ : निदान एवं उपचार

आनन्द कुमार पाण्डेय[1], पंकज गुणवन्त[2] एवं पीयूष तोमर[3]

[1]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय, [2]पशु मादा एवं प्रसूति रोग विभाग, [3]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रजनन सम्बंधित समस्या डेयरी में उत्पादन की कमी का एक प्रमुख कारण है। प्रजनन विकारों के कारण डेयरी में प्रति वर्ष पशुओं की संख्या कम हो रही है, एक प्रबंधित डेयरी में 10 प्रतिशत से ज्यादा प्रजनन समस्याएँ चिंता का विषय है, जिसका शीघ्र ही निदान एवं उपचार अनिवार्य है। एक पशु से सामान्यत: एक बच्चा प्रति वर्ष होना चाहिए। परन्तु सही प्रबंधन एवं देखरेख ना होने के कारण किसान भाईयों के लिए यह एक सपना ही रह जाता है। पशुओं में पाई जाने वाली मुख्य प्रजनन समस्याएँ इस प्रकार हैं।

1. **गर्मी में ना आना (एनाईस्ट्रस)** – एक नियमित अंतराल पर ऋतुकाल के संकेत का अभाव एनाईस्ट्रस कहलाता है। यह समस्या सबसे अधिक पशुओं में देखी जाती है एवं निम्न कारणों से हो सकती है।

- जन्म के समय जननांगों में विकृति या आनुवांशिक बाँझपन जैसे डिम्ब ग्रंथि में विकासरोध, बच्चेदानी की ग्रंथियों को अविकसित होना इत्यादि। यह विकार पशु चिकित्सक द्वारा पशु की जाँच कराने पर पता चल सकता है तथा इस स्थिति में कोई भी रोगोपचार प्रबंधन उपयोगी नहीं है।
- यौवनारंभ से पूर्व, गर्भित पशु, ब्यांत के 40 से 60 दिन तक तथा बुढ़ापे में पशु ऋतुकाल के संकेत नहीं देता है। इस सम्बंध में किसी भी उपचार की आवश्यकता नहीं है।
- संतुलित आहार की कमी से भी पशु गर्मी में नहीं आते है। विटामिन एवं खनिज विभिन्न प्रजनन कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनकी कमी से विभिन्न प्रजनन समस्याएँ हो सकती हैं। इसलिए पशु को संतुलित आहार के साथ-साथ खनिज मिश्रण अवश्य देना चाहिए। पशुओं को नियमित समय पर कीड़े मारने की दवाईयाँ अवश्य दें।
- शरीर में प्रजनन सम्बंधित हार्मोन का स्राव न होने अथवा देरी से होने के कारण भी पशु गर्मी में नहीं आता है।
- कई बार पशुओं में ऋतुकाल की अवधि छोटी होने पर या ऋतुकाल के संकेत ठीक ढंग से ना दिखाने पर गर्मी का पता नहीं चल पाता है और इसे साइलेन्ट हीट या 'अप्रत्यक्ष ईस्ट्रस' या मूक गर्मी कहते है। यह समस्या गर्मियों में भैंसों में अधिक पाई जाती है। इस समस्या से निजात पाने के लिए नर पशु को मादा के साथ रखना चाहिए या फिर ''टीजर बुल'' (नसबन्दी वाले साँड) का प्रयोग करना चाहिए।
- गर्भाशय में संक्रमण के कारण कार्पस ल्युटियम का अण्डदानी में बना रहना, इस रोग की पहचान हैं। पशु चिकित्सक द्वारा 10-12 दिन के अन्तराल पर दो बार पशु के जननांगो की जाँच से हो सकती है तथा रोगोपचार के लिए पी. जी. एफ. 2 एलफा ग्हार्मोन (वेटमेट/प्रगमा आदि) का टीका उस माँस में लगवाना चाहिए।

2. **पशुओं का बार-बार फिरना (रिपीट ब्रीडिंग)** – रिपीट ब्रीडिंग में गाय बिल्कुल सामान्य होती है परन्तु तीन या अधिक बार गर्भाधान सेवाओं के बाद भी गर्भधारण में असफल होती है। ऐसे पशु समयानुसार गर्मी में आते तथा इनका जननांग सामान्य होता है। रिपीट ब्रीडिंग निम्न कारणों से हो सकती है।

- अंडाणु का उत्सर्जन ना होना या देरी से उत्सर्जित होना।
- अंडाणु का वृद्ध होना।

- मादा पशु में प्रजनन सम्बंधी हार्मोन की कमी।
- बच्चेदानी में संक्रमण या सूजन।
- संतुलित आहार की कमी।
- वीर्य या नर पशु में खराबी।
- कृत्रिम गर्भाधान के समय वीर्य को सही समय व समुचित स्थान (मादा जननांग) पर न छोड़ा जाना।

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्न बातों का ध्यान रखें

- जब भी मादा पशु गर्मी में आए उसके 10 घंटे बाद ही गर्भधारण करवाएँ या नर पशु से मिलवाएँ।
- पशु को संतुलित आहार एवं खनिज मिश्रण नियमित रुप से प्रदान करें।
- उत्तम स्तर का वीर्य ही गर्भाधान के लिए प्रयोग करें।
- यदि बच्चेदानी में संक्रमण या सूजन हो तो पशु को एंटिबायोटिक का टीका लगवायें।

3. **सिस्टिक ओवेरियन डिजनेरेशन (अण्डेदानी में गांठ)** - यह बीमारी संकर नस्ल के दुधारु पशुओं में अधिक देखी जाती है।
- प्राय: तीसरे से पाँचवे ब्यांत में ज्यादा होती है।
- फफूँद वाला चारा खिलाने से।
- यह बीमारी आनुवांशिक भी होती है।
- इस बीमारी में पशु बार-बार लम्बे समय तक गर्मी में आता है या कई बार लम्बे समय तक गर्मी में नहीं आता है।
- इस बीमारी के निदान तथा रोगोपचार के लिए पशु चिकित्सक से सलाह लें।
- समय रहते अगर उपचार नहीं करवाया तो यह स्थाई बाँझपन का कारण हो सकता है।

4. **भ्रूण की मृत्यु** - गर्भकाल की किसी भी अवस्था में भ्रूण की मृत्यु हो सकती है। गर्भकाल के छठे से 18वें दिन तक 45 प्रतिशत भ्रूणीय क्षय होने की प्रबल संभावना होती है। इसका कारण कमजोर कार्पस ल्यूटियम का बनना है, जिसके फलस्वरुप प्रोजेस्ट्रोन का स्तर न्यूनतम होना है। पशु नियमित अन्तराल पर कामोत्तेजना का लक्षण प्रदर्शित करता है या फिर 30 दिन या उससे अधिक अन्तराल पर कामोत्तेजना की प्रवृति दोहराता है।

5. **गर्भाशय में संक्रमण** - कामोत्तेजना और प्रसव के समय संक्रमण गर्भाशय में प्रवेश करता है, रक्त के माध्यम से संक्रमण का गर्भाशय में प्रवेश करने की संभावना कम ही होती है।प्रसव के बाद गर्भाशय में संक्रमण हो तो पशु उदासी के लक्षण, भूख की कमी, बुखार, कमजोरी इत्यादि लक्षण दिखाता है, योनी मार्ग से पीला बदबूदार मवाद स्रवित होता है।

प्रसव के प्रथम चार हफ्ते के दौरान संक्रमण गर्भाशय के ऊपरी स्तर पर रहता है और इसे -''एंडोमेट्राइटिस''- कहते है। इस बीमारी में कामोत्तेजना सामान्य होती है परन्तु पशु रिपोट ब्रीडर बन जाता है। इस बीमारी का समाधान एंटीबायोटिक टीकों से किया जा सकता है।

निष्कर्ष - पशुओं में बाँझपन के कई कारण है और जटिल भी हो सकते हैं। इसलिए बाँझपन या प्रजनन समस्याओं के स्टीक कारणों का निर्धारण करने के लिए बाँझ पशुओं की जाँच पशु चिकित्सक से अवश्य करवाएँ।

प्रसव उपरान्त हीमोग्लोबिन्यूरिया : कारण, लक्षण एवं उपचार

कमलदीप[1], अनिका मलिक[2] एवं प्रियंका[3]

[1]पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, [2]पशु विस्तार शिक्षा विभाग, [3]प्रबंधन अध्ययन विभाग

[3]भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर, सोनीपत

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

परिचय – यह अत्यधिक दुग्ध उत्पादक वाले पशु में होने वाला रोग है जो प्रसव के तुरन्त बाद होता है। इसमें शिरा के अंदर लाल रक्त कण का विभाजन होता है। इसमें मूत्र में हिमोग्लोबिन आता है और पशु में रक्ताल्पता हो जाता है।

कारण

1. पशुओं में यह रोग एक उत्पादन संबंधी रोग माना जाता है। फॉस्फोरस की कमी के कारण यह रोग पशुओं में होता है।
2. क्रुसीफेरी परिवार के कुछ पौधों के खिलाने पर फॉस्फोरस की कमी हो जाती है।
3. इसके अलावा यदि पशु को सूखा चारा व पूर्ण आहार के बिना रखा जाए तो रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।
4. भैंस गर्मी के दिनों में तीसरी से चौथी ब्यांत की हो तो प्रसव उपरान्त इस रोग की होने की संभावना अधिक होती है।
5. गर्भकाल के अंत में फीटस के द्वारा अधिक फॉस्फोरस की आवश्यकता एवं गर्मी से उत्पन्न तनाव के कारण फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है। इससे यह रोग गर्भकाल के अंत में होता है।

लक्षण – यह रोग दो रुप में होता है। कम तीव्र रुप और तीव्र रुप।

कम तीव्र रुप – पशु का मूत्र लाल हो जाता है। पशु 21 घंटे तक सामान्य रुप से आहार एवं दुग्ध उत्पादन करता है।

तीव्र रुप – मूत्र हीमोग्लोबिन रहने के कारण लाल रंग का हो जाता है। पशु खाना छोड़ देता है एवं अचानक निर्बल हो जाता है तथा तुरन्त निर्जलीकरण विकसित हो जाता है। श्लेष्मा झिल्ली पतली पड़ जाती है। शरीर का तापक्रम 103–104° फारनहाइट हो जाता है। अंत में पाण्डु हो जाता है। 3–5 दिन में पशु शक्तिहीन होकर गिर पड़ता है। कभी–कभी पूँछ का सिरा, कान तथा खुर गिर जाते है तथा कुछ देर में पशु की मृत्यु हो जाती है। जो पशु बच जाते है, धीरे–धीरे 21 दिनों में स्वच्छ हो जाते हैं, लेकिन कुलषित भूख का लक्षण दिखता है।

चिकित्सा

1. सोडियम एसिड फॉस्फेट 60–80 ग्राम शिरा द्वारा 20 प्रतिशत विलेय, 5 प्रतिशत डेस्ट्रोज में मिलाकर 3–5 दिनों तक देते है।
2. एस्कोर्बिक एसिड 5 ग्राम सूई द्वारा देते है।
3. फेरीटास 7 मि.ली. माँसपेशी में 1 दिन छोड़कर एक बार 5 दिनों तक दें।
4. खनिज लवण 30 ग्राम प्रतिदिन देना चाहिए।

चयापचयन सम्बंधी समस्याएँ: जैव रासायनिक तथ्य

शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान
पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

दुग्ध ज्वर

दुधारु पशुओं में होने वाली एक गैर संक्रामक रोग अवस्था है। यह ब्याने के कुछ घंटों या दिनों के बाद होता है। यह मिल्क फीवर(दुग्ध ज्वर) के नाम से जाना जाता है, परन्तु इसमें पशु के शरीर का तापमान बढ़ने के बजाए कम हो जाता है।

ब्याने के कुछ महीने पहले पशुओं का राशन कम कर दिया जाता है जिससे उनके शरीर में कैल्शियम की कमी हो जाती है। पशुओं में सामान्य अवस्था में कैल्शियम के स्थानीय स्तर को बनाए रखने में विटामिन डी, कैल्सीटोनिन एवं पैराथाइराइड हॉर्मोन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पशुओं में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के अनुपात का भी विशेष महत्व है। शरीर में यह अनुपात 1:1 से 2:1 सबसे आदर्श माना जाता है।

गर्भकाल के दौरान भ्रूण के विकास के लिए कैल्शियम की आवश्यकता होती है। यदि इस समय आहार में कैल्शियम की कमी हो जाए तो पशु में कैल्शियम की इस बढ़ी हुई कैल्शियम की आपूर्ति सामान्य शारीरिक कैल्शियम भण्ड़ार से की जाती है और हड्डियों से प्राप्त कैल्शियम भी इस कमी को पूरा करने में उपयोगी होता है। कैल्शियम की इस तीव्र क्षति से शरीर के कैल्शियम भण्ड़ार क्षीण हो जाते हैं। प्रसूति काल के दौरान भी कैल्शियम की अतिरिक्त आवश्यकता दुग्ध निर्माण के लिए उपयोगी होती है।

कैल्शियम हड्डियों तथा दाँतों की रचना करता है और इन्हें मजबूत बनाता है, हृदय की प्रक्रिया को सामान्य रखता है, रक्त के जमने में सहायता करता है तथा माँसपेशियों को क्रियाशील बनाए रखता है। अत: गर्भावस्था एवं प्रसूतिकाल में कैल्शियम की अतिरिक्त आवश्यकता व कम सेवन के कारण पशुओं का शरीर ठंडा पड़ जाता है तथा वे अत्यंत कमजोरी महसूस करने लगते हैं। पशु को खड़े रहने में कठिनाई होती है एवं पशु बेहोश भी हो सकता है। समय रहते पशु का ईलाज न करवाया जाए तो मृत्यु की भी संभावना बनी रहती है। दुग्ध ज्वर होने पर पशु अपनी गर्दन अपने पेट की तरफ घूमा लेता है, और बैठ जाता है।

ऐसी परिस्थिति आने पर डॉक्टर को तुरन्त बुलवाएँ। कैल्शियम की दवा इसमें बहुत उपयोगी होती है तथा इससे पशु तुरन्त ठीक हो जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए पशुओं को खनिज मिश्रण खिलाना चाहिए।

कीटोसिस

गर्भावधि, दुग्ध उत्पादन एवं प्रसव क्रिया जैसे सभी कारक मिलकर पशु के चयापचयन को प्रभावित करते हैं। प्रसव से पहले एवं दुग्धकाल प्रारम्भ होने तक हॉर्मोन में बदलाव आने लगते है जो प्रसव उपरान्त धीरे-धीरे सामान्य अवस्था में आने लगते है। इन परिवर्तनों के कारण पशु को भूख कम लगती है जिससे इनके भोजन ग्रहण करने की क्षमता कम होने लगती है। इस स्थिति में पशु अपने शरीर में जमा की गई वसा का उपयोग करके एक असामान्य स्थिति से गुजरते है जिस कारण कीटोनकाय बनने लगती है जिसे कीटोसिस कहते हैं।

इन्सुलिन व ग्लूकागन के पारस्परिक प्रभाव से शरीर में ग्लूकोज की मात्रा लगभग स्थिर रहती है। यदि खाद्य (उपवास अथवा आहार न ग्रहण करने की स्थिति) से पशु की ऊर्जा की मांग पूरी नहीं होती तो, रक्त में शर्करा की कमी हो जाती है और जिगर इस कमी को पूरा नहीं कर पाता है। ऐसे में ग्लूकागन का अधिक स्त्राव व इन्सुलिन की कमी हो जाती है। इससे वसायुक्त अम्ल, वसा ऊतकों से मुक्त हो रक्त

में आ जाती है (तब वसा अम्लों का ज्यादा चयापचय होने लगता है)। माँसपेशी ग्लूकोज की अपेक्षा वसा अम्लों के चयापचयन से ऊर्जा प्राप्त करने लगती है। इस प्रकार उपवास (दीर्घकालिक) की स्थिति में शरीर में वसा का उपयोग होने लगता है। अत्यधिक मात्रा में कीटोनकाय से शरीर के महत्वपूर्ण अंग जैसे फेफड़ें, यकृत एवं किड़नी को क्षति पहुँचने की अत्यधिक संभावना रहती है। दुधारु पशुओं में ऊर्जा की जरुरत को पूरा न करें तो नकारात्मक ऊर्जा संतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उनके श्वास, मूत्र एवं दुग्ध में कीटोनकाय आने शुरु हो जाते है।

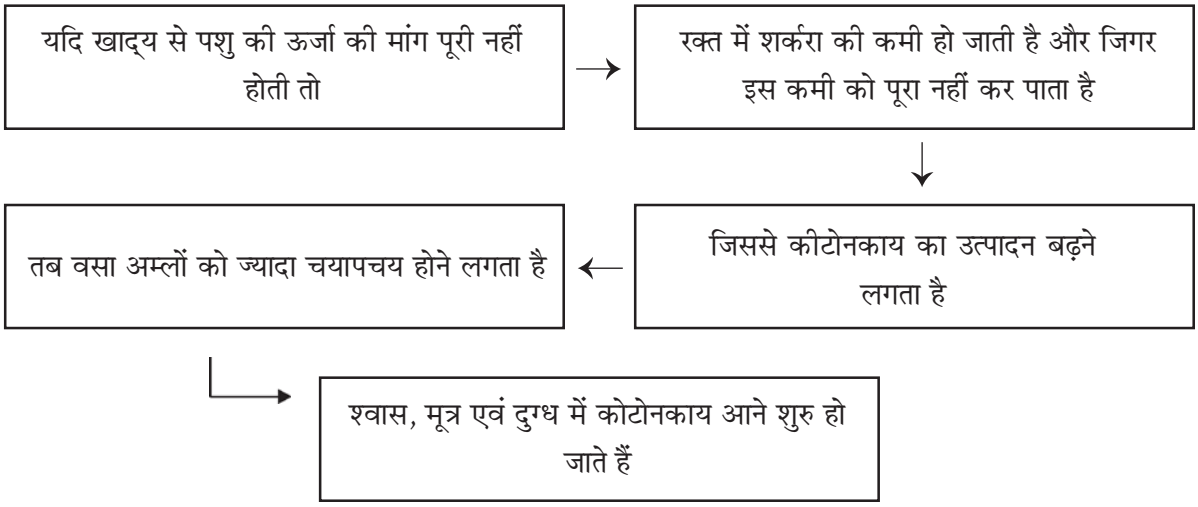

ऐसा होने पर पशुओं में निम्न लक्षण दिखाई देते हैं

- मुख्यत: उच्च दुग्ध उत्पादन पशु प्रभावित होते हैं।
- यह ब्यांत के कुछ दिनों बाद होता है।
- इससे दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती है।
- पशु के श्वास में एसीटोन जैसी तीव्र गंध आने लगती है।
- तंत्रिका संकेत जैसे अतिरिक्त लार, अक्रामक्ता, चाल में असमन्वय आदि आने लगते है।
- अपर्याप्त खाद्य के सेवन से कीटोसिस उत्पन्न हो सकता है

उपाय

कीटोसिस होने पर क्या किया जाए?

- कीटोसिस के लक्षण आने पर पशु को तुरन्त पशु चिकित्सक से जाँच करवाएँ।
- कीटोसिस में अत्यधिक कीटोनकाय मूत्र एवं दुग्ध में उत्सर्जित होने लगते हैं।
- मूत्र की जाँच करवाएँ।
- कीटोसिस की पुष्टि होने पर प्रारंभिक लक्ष्य ग्लूकोज की मात्रा को स्थापित करना होता है।
- पशुओं को ब्यांत के तुरन्त बाद ऊर्जा युक्त आहार देना चाहिए।

पशुओं में दुग्ध ज्वर (मिल्क फीवर)

रेनू सिंह, गौरी चंद्रात्रे एवं के. के. जाखड़

पशु विकृत्ति विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

दुग्ध ज्वर एक उपापचयी (मेटाबोलिक) रोग हैं, जो गाय-भैंस के ब्याने से कुछ समय पहले या ब्याने के तुरन्त बाद अथवा 3 दिनों के भीतर होता है। इस रोग से ग्रसित पशु में कैल्शियम की भारी कमी हो जाती है तथा माँसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। प्राय: यह रोग अधिक मात्रा में दूध देने वाले मादा पशुओं को होता है। यह रोग गाय, भैंस एवं बकरियों में पाया जाता है। यह रोग अधिक दूध देने वाली 6 से 11 वर्ष की उम्र की गायों व भैंसों में तीसरे से सातवें ब्यांत में अधिक होता है। पहले ब्यांत में यह रोग प्राय: नहीं होता है। इस रोग को हाइपोकैल्सिमिया, काविंग पैरालिसिस के नाम से भी जाना जाता है।

रोग के कारण -

यह रोग निम्न कारणों से हो सकता हैं।

पशु के रक्त में सीरम कैल्शियम की कमी- रक्त में कैल्शियम की कमी तीन प्रमुख कारणों से होती है :-

1. पशु के ब्याने के बाद काफी मात्रा में कैल्शियम खीस के साथ शरीर के बाहर आ जाता है। कैल्शियम की मात्रा खीस में रक्त से 12-13 गुना अधिक होता है।
2. पशु के ब्याने के बाद खीस में कैल्शियम निकल जाने के कारण हड्डियों से शरीर को कैल्शियम नहीं मिल पाता है।
3. ब्याने के बाद यदि पशु को कम मात्रा में आहार दिया जाये तो कैल्शियम का भंडार कम हो जाता है। भूखे एवं कमजोर पशु में मिल्क फीवर (दुग्ध ज्वर) के लक्षण जल्दी प्रकट होते हैं।

रोग के लक्षण - इस रोग के लक्षण को तीन अवस्था में विभाजित किया जा सकता है।

1. **उत्तेजित अवस्था** -
   - उत्तेजना, टेटनस रोग सदृश लक्षण एवं अधिक संवेदनशीलता।
   - पशु के सिर व पैर में अकड़न का आ जाना।
   - जीभ का बाहर तथा दाँत किटकिटाना।
   - पशु का तापमान सामान्य या हल्का बढ़ा हुआ होना।
   - पिछले पैरों में अकड़न होना।
   - आंशिक लकवा जैसी स्थिति के कारण पशु का जमीन पर गिर जाना।
   - पशु का दाना-चारा न खाना।
   - चलने-फिरने में असमर्थ होना।

2 **पशु की गर्दन मोड़कर बैठी हुई अवस्था** -
   - रोगी पशु अपनी गर्दन को एक ओर फ्लैंक की तरफ मोड़कर निढाल सा बैठा रहता है।
   - पशु लेटने के बजाय सीने वाले भाग (स्टरनम) के सहारे बैठा रहता है।
   - रोगी पशु का नथूना (मजल) सूख जाता है।
   - पशु का शरीर विशेषकर पैर ठंडे हो जाते हैं।
   - पशु में उत्तेजना की अवस्था खत्म हो जाती है।
   - पशु खड़ा नहीं हो पाता है।
   - पशु के आँख की पुतलियाँ फैल कर बड़ी हो जाती हैं।
   - पशु के गुदा की माँसपेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं।
   - दिल की धड़कन बढ़ जाती है, परन्तु धड़कन की आवाज़ सुनाई नहीं देती।

- रक्त दबाव कम हो जाता है।
- प्रथम अमाशय (रूमन) की गति कम हो जाती है।

3 लेटे रहने की अवस्था –

- रोगी पशु सीने के सहारे बैठने के बजाय बेहोशी की अवस्था में लेटा रहता है तथा खड़ा भी नहीं हो पाता।
- शरीर का तापमान काफी कम हो जाता है।
- पशु की नाड़ी तथा हृदय गति कम हो जाता है।
- पशु में लकवा की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।
- उपचार के अभाव में पशु की मौत 12–24 घण्टों के अन्दर हो जाती है।

रोग का निदान – रोग का निदान निम्नलिखित बातों के आधार पर किया जाता है :–

1. लक्षणों के आधार पर
2. रोगी पशु को नशों में कैल्शियम देने के बाद पशु की स्थिति में सुधार।

चिकित्सा एवं रोकथाम –

- इस रोग से पीड़ित पशु की चिकित्सा जितनी जल्दी हो सके शुरु कर देनी चाहिए क्योंकि यदि पशु एक बार जमीन पर लेट गया तो माँसपेशियों में पक्षाघात हो जाता है।
- कैल्शियम बोरोग्लूकोनेट

नोट – ठंडी बोतल से कैल्शियम को नस में नहीं देना चाहिए। पहले बोतल को गरम पानी या धूप में रखकर पशु के शरीर के तापमान के सदृश गरम कर लेना चाहिए, फिर धीरे–धीरे खून की नस में देना चाहिए।

- कैल्शियम का इंजेक्शन त्वचान्तर्गत गर्दन के दोनों और (50–50 मि.ली.) अलग स्थानों पर लगाना चाहिए ताकि स्थानीय प्रतिक्रिया न हो।
- पूरक उपचार कई बार ऐसा देखा जाता है कि गम्भीर स्थिति में पशु मृत के समान हो जाता है। ऐसी अवस्था में कैल्शियम के अतिरिक्त पूरक उपचार भी देना आवश्यक है।
- सोडियम एसिड फास्फेट नार्मल सैलाइन या डेक्स्ट्राज के साथ दें।
- मैगनिशियम सल्फेट चर्मान्तर्गत दें।
- इस रोग में पक्षाघात होने के कारण तथा रुमन में गति न होने के कारण रोगी पशु गोबर नहीं करता है, ऐसी अवस्था में हाथ द्वारा हल्के–हल्के से गोबर निकालना चाहिए।
- जब हाइपोकैल्शियम के साथ हाइपोमैगनिशिया भी हो जाये तो ऐसी अवस्था में कैल्शियम बोरो ग्लूकोनेट के बजाय कैल्शियम मैगनिशियम बोरो ग्लूकोनेट देना चाहिए।
- पशु को स्वच्छ एवं साफ वातावरण में रखना चाहिए।

नोट– कोई भी दवा पशु चिकित्सक के परामर्श के बिना न दें।

सर्दियों में बछड़ों में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ और उनका समाधान

सुदीप सोलंकी[1] एवं संध्या मोरवाल[2]

[1]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय प्रशिक्षण एंव अनुसंधान केन्द्र, सिरोही

[2] पशु औषधि विभाग, पशुचिकित्सा महाविद्यालय, नवानिया उदयपुर

एक पशुपालक के लिए नवजात पशु (बछड़ा) उसके बच्चे की तरह होता है। इसलिए नवजात पशु की सही तरह से देखभाल करना अति आवश्यक है। पशुपालक कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों का ध्यान रखें तो उसका नवजात पशु एकदम स्वस्थ रहता है।

नवजात पशु (बछड़ों) में मुख्यत: तीन बीमारियाँ पाई जाती हैं, जिनका समय रहते उपचार ना किया जाए तो नवजात पशु की मृत्यु भी हो सकती है। पशुपालक कुछ सावधानियाँ रखते हुए अपने पशुओं को इन बीमारियों के प्रभाव से बचाकर रख सकते हैं।

निम्नलिखित बीमारियाँ -

1. **बछड़ों का न्यूमोनिया**
2. **बछड़ों का उजला-पीला दस्त**
3. **नाभि रोग**

1. बछडों का न्यूमोनिया रोग - बछड़ों में न्यूमोनिया नामक बीमारी वॉयरल तथा बैक्टीरियाँ द्वारा उत्पन्न होती है। बछड़ों में वॉयरल तथा बैक्टीरियल न्यूमोनिया 2-5 माह की उम्र में ज्यादा होता है, लेकिन जन्म के बाद पहले सप्ताह से लेकर कभी-कभी 8-12 माह की उम्र के बछड़ों में भी यह रोग हो जाता है। बछड़ों में न्यूमोनियाँ सर्दी के मौसम में अधिक होता है, क्योंकि पशुपालक के घर पर बछड़ों को सर्दी एवं ठंडी हवाओं से बचाने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती है।

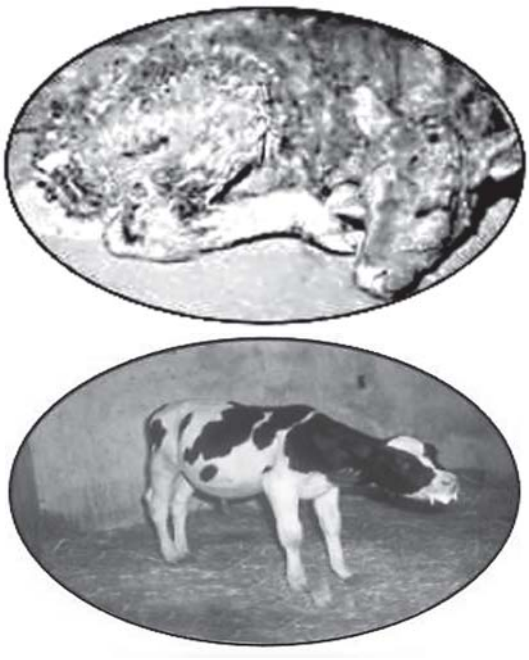

रोग का कारण - बछड़ों में न्यूमोनिया नामक रोग वॉयरस, बैक्टीरिया, माइकोप्लाज्मा आदि की वजह से होता है। न्यूमोनिया रोगी बछड़ों के सीधे सम्पर्क में आने एवं हवा के द्वारा भी रोगी बछड़ों से स्वस्थ बछड़ों में यह रोग संक्रमण द्वारा फैल जाता है।

रोग के लक्षण -

- न्यूमोनिया रोग से ग्रस्त बछड़े के शरीर का तापमान सामान्य से अधिक (105^0-107^0) हो जाता है।
- वजन दर एवं नाड़ी दर भी बढ़ जाती है।
- प्रभावित बछड़े की वजन दर बढ़ने के साथ ही पशु द्वारा साँस लेते समय कर्कश ध्वनि आती है।
- प्रभावित बछड़े के नाक से हल्का गाढ़ा मवाद मिला हुआ स्त्राव आता है।
- न्यूमोनिया ग्रस्त बछड़े साँस लेने में तकलीफ होने के कारण मुँह खोलकर साँस लेते है।
- यदि बछड़े को न्यूमोनिया वॉयरस के द्वारा होता है तो बछड़े को रुक-रुक कर खाँसी भी हो सकती है।
- एकाएक तेज न्यूमोनिया मे बछड़े की कुछ ही घण्टों में मृत्यु हो जाती है जबकि हल्के न्यूमोनिया में 4-7 दिन के उपचार के बाद पशु ठीक हो जाता हैं।

बछड़ों में न्यूमोनिया रोग की रोकथाम एवं उपचार -

- पशुपालक पशुशाला को साफ-सुथरा रखें तथा बछड़ों को समूह में ना रखें। सर्दी का मौसम होने पर बछड़ों को ऐसी जगह पर रखे जहाँ सर्दी व ठंडी हवाओं का प्रकोप कम हो।

- पशुपालक बछड़े के जन्म के बाद में कुछ माह तक बछड़े के खानपान तथा रख-रखाव का विशेष ध्यान रखें।
- बछड़ों में न्यूमोनियाँ रोग होने पर इसके लिए कोई विशेष वैक्सीन (टीका) उपलब्ध नहीं है।
- वॉयरसजनित न्यूमोनियाँ रोग में एंटीबॉयोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाईयों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है, लेकिन बैक्टीरियल न्यूमोनियाँ में प्रभावित बछड़ों को एंटीबॉयोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाईयाँ देनी चाहिए।
- बछड़ों को पेट के कीड़े मारने की दवाईयाँ (कृमिनाशक) भी देनी चाहिए।
- इंजेक्शन टेट्रासाइक्लिन एवं क्लोरएमफेनिकोल देने चाहिए।
- न्यूमोनिया रोग का उपचार कम से कम पाँच दिन तक तो करना ही चाहिए।

2. बछड़ों का उजला-पीला दस्त रोग

नवजात बछड़ों में उजला-पीला दस्त रोग एक महत्वपूर्ण रोग है। बछड़ों में यह बीमारी *ई. कोलाई* नामक बैक्टीरिया के संक्रमण के कारण होती है। इस बीमारी में बछड़ा शरीर से काफी कमजोर हो जाता है। इस रोग में बछड़ों को तेज पतले, उजले-पीले दस्त होते हैं। शरीर में पानी की कमी हो जाती है तथा बछड़ा काफी कमजोर हो जाता है। समय पर ईलाज न करवाने पर ज्यादातर बछड़े मौत के शिकार हो जाते हैं। सामान्यत: यह रोग 1 से 15 दिन की उम्र के बछड़ों में अधिक होता है। गाय के बछड़ों में यह बीमारी जन्म के कुछ सप्ताह में ही हो सकती है।

ई. कोलाई नामक बैक्टीरिया वातावरण में हर जगह पाए जाते हैं जो सेप्टिसीमिया व दस्त के लिए जिम्मेदार होते हैं।

यह रोग स्वस्थ पशुओं में प्रभावित पशुओं के गोबर से दुषित आहार व पानी के उपयोग से फैलता है। *ई. कोलाई* बैक्टीरिया आहारनाल में पहुंचकर टॉक्सिन (जहर) उत्पन्न करते है।

रोग के लक्षण -

- रोगग्रस्त पशु की म्यूकस मेम्ब्रेन (श्लेष्मा झिल्ली) सफेद-पीली पड़ जाती है।
- बछडा दूध पीना बिल्कुल बंद कर देता है।
- नवजात पशु काफी सुस्त हो जाता है व शरीर का तापमान व नाड़ी दर बढ़ जाती है।
- नवजात पशु में कंपकंपाहट व आँखों का घुम जाना।
- पतले-चिकने तथा सफेद-पीले दस्त आते हैं।
- बछडों को बार-बार दस्त लगने से पेट दर्द, कमर का मुड जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।
- रोगग्रस्त बछडों का समय रहते ईलाज ना करवाने पर 3-5 दिन में ही मृत्यु हो जाती है।

रोग की रोकथाम व उपचार -

- पशुशाला को साफ-सुथरा रखना चाहिए।
- नवजात बछड़ों को खीस पिलाने से उनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है इसलिए बछड़ों को 50 मिली./किग्रा. शरीर भार के हिसाब से जन्म के बाद पाँच दिन तक खीस जरूर पिलाना चाहिए।
- पशुपालक पशुघर में बछड़ों को एक साथ समूह में न रखें।
- इस बीमारी के उपचार के लिए एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाईयों का उपयोग करने से पूर्व गोबर की जाँच करवाएँ।
- एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाइयाँ जैसे- स्ट्रेपटोमायसिन टेट्रासायकलिन, नाइट्रोफयुराजोन इतियादि।

3. बछड़ों में नाभि रोग

नवजात बछड़ों में सफाई की कमी से नाभि में मवाद पड़ जाती है। नाभि चिपचिपी नजर आती है साथ ही उसमें सुजन व दर्द होने लगता है। बछड़ा सुस्त पड़ जाता है एवं माँ का दुध नहीं पीता है। इसकी रोकथाम के लिए नाभि को पी. पी. (लाल दवा) से साफ करके टिंक्चर आयोडिन तब तक लगानी चाहिए जब तक कि नाभि सूख न जाएँ।

रोग के कारण -

- नाभि रोग कई प्रकार के बैक्टीरिया के कारण होता है।

जैसे :- *स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफाइलोकोकस, ई. कोलाई, साल्मोनेल्लोसिस* आदि।

- जो नवजात गर्भकाल के पूरे समय बाद पैदा होते हैं उनमे यह रोग कम होता है जबकि गर्भकाल से पूर्व

जन्म लेने वाले बछड़ों में यह रोग ज्यादा होता है।

- गर्भनाल को गंदे चाकु से काटना, एंटीसेप्टिक का उपयोग ना करना, अन्य पशु व स्वयं बछडे के द्वारा नाल को चूस लेने की वजह से भी संक्रमण हो जाता है।

रोग के लक्षण -

- प्रभावित पशु की नाभि में संक्रमण के कारण सूजन आने से नाल आकार में बड़ी हो जाती है।
- कभी-कभी बछड़ें-बछड़ियों में इस अवस्था में अम्बलिकल हर्निया की समस्या सामने आती है।
- कुछ विशेष बैक्टीरिया पैरो के जोड़ों में सुजन पैदा करते है, जिससे कभी-कभी ज्वाइंट कैप्सूल फट जाती है।
- यदि प्रभावित पशु का समय पर ईलाज ना करवाया जाएँ तो जोड़ों में फाइब्रोसिस तक हो जाता है।
- अगर संक्रमण सिर्फ अंबलिकस में हो तथा पशु का समय पर ईलाज करवाया जाएं तो पशु को बचाया जा सकता है, लेकिन यदि समस्या जोड़ों में हो एवं मवाद भी हो जाएं तो समस्या गंभीर हो जाती है। इसलिए जितना जल्दी हो सके रोगी पशु का ईलाज करवाना चाहिए।
- समय रहते रोगी पशु का उपचार नही करवाने पर पशु शरीर में टॉक्सिमिया व सेप्टिसीमिया के कारण मृत्यु हो जाती है।

उपचार-

- पशु का परीक्षण अच्छी तरह से करना चाहिए कि अंबलिकस में संक्रमण है या अंबलिकल हर्निया।
- अंबलिकल हर्निया होने की स्थिती में अंबलिकस एब्सेस को ऑपन नहीं करना चाहिए बल्कि इस स्थिती में हर्निया का उपचार करना चाहिए।
- हर्निया नहीं होने की स्थिती में अंबलिकस एब्सेस को नाल के नीचे से क्रिस-क्रॉस चीरा लगाकर मवाद को बाहर निकालें। इसके बाद लाल दवा के हल्के घोल से धोकर टिंक्चर आयोडिन लगाना चाहिए।
- जोड़ों में दर्द होने पर एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाइयों का उपयोग करें।

रोकथाम-

- जहाँ नवजात पशु को रखा जाता है, वहाँ की अच्छे से साफ-सफाई करनी चाहिए।
- अंबलिकस नाल को काटते समय साफ व संक्रमणरहित चाकू का उपयोग करेंव उसके बाद टिंक्चर आयोडीन लगाएँ।

इस तरह हम कुछ छोटी-छोटी लेकिन महत्वपूर्ण बाँतों का ध्यान रखते हुए व सावधानियाँ रखकर नवजात पशु को बीमारियों से बचा सकते हैं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 1800-180-1184 (टोल-फ्री)

सोम, बुध, शुक्र (सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

गलघोटू रोग : कारण व बचाव

के. के. जाखड़, विकास नेहरा, रेनू सिंह एवं चन्द्रात्रे गौरी

पशु विकृत्ति विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

गलघोटू मुख्यत: गाय तथा भैंस प्रजाति के पशुओं में फैलने वाला एक भयंकर संक्रामक रोग है। यह रोग पशुओं में जीवाणु द्वारा फैलता हे। यह रोग भैंस को गाय की अपेक्षा 3 गुणा अधिक प्रभावित करता है। इस रोग से 2 वर्ष से कम आयु के पशुओं की अचानक मृत्यु हो जाती है। इस रोग को अन्य नामों जैसे कि घुड़का, घोटुआ, एच.एस., गलफुल्ला, नाविक बुखार, घुर्रखा तथा पाश्चुरेलोसिस आदि नामों से भी जाना जाता है। इस रोग में मुख्यत: श्वसन तंत्र प्रभावित होता है तथा साँस लेने में कठिनाई के कारण पशुओं की मृत्यु हो जाती है। यह रोग भेड़, बकरियों, ऊँटों तथा सूअरों को भी प्रभावित कर सकता है। रोग के लक्षण प्रकट होने के बाद 80-90 प्रतिशत पशुओं की मृत्यु हो जाती है तथा रोग तेजी से फैलने के कारण पशुपालकों को भारी नुकसान होता है। यह रोग सामान्यत: वर्षा ऋतु में होता है।

रोग के कारण - यह रोग *पाश्चुरेल्ला-मल्टोसीडा* नामक जीवाणु से होता है। भेड़ों में यह रोग *मेनहीमिया हीमोलिटिका* से भी हो सकता है। यह जीवाणु पहले से ही पशु की श्वसन नली में शांत अवस्था में रहते हैं परन्तु निम्नलिखित प्रतिकूल परिस्थितियों में यह जीवाणु पशु को रोग ग्रसित बना देते हैं तथा यह बीमारी तेजी से फैल सकती है :-

क) जब भी वातावरण में परिवर्तन होता है।

ख) पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता किसी कारणवश कम हो जाने पर।

ग) वर्षा के बाद वातावरण में नमी बढ़ जाने से।

घ) बाढ़ के दौरान।

ङ) जब मुँह-खुर बीमारी पहले से ही फैली हो।

च) मौसम बदलते समय जैसे सर्दी के आरम्भ तथा बरसात के बाद।

छ) कम उम्र के पशुओं में दूध छुटवाने के बाद।

ज) पशुओं में असंतुलित आहार एवं कुपोषण के कारण।

झ) कम स्थान पर अधिक पशुओं को रखने के कारण।

ञ) पशुओं को लंबी दूरी तक एक स्थान से दूसरे स्थान तक गाड़ी में या चलाकर ले जाने के कारण।

ट) पशुओं में विषाणुओं से बीमारी होने पर।

रोग का फैलाव - यह रोग दूषित चारा, पानी एवं स्वस्थ पशुओं का रोगी पशुओं के संपर्क में आने पर फैलता है। रोग से ग्रसित पशुओं के मलमूत्र के कारण भी यह रोग अन्य स्वस्थ पशुओं में फैल सकता है।

रोग के प्रमुख लक्षण

क) रोगी पशु में तेज बुखार (104^0-106^0) व ठंड जैसी कपकपाहट होती है।

ख) पशुओं के नीचे अग्र भाग तथा अगले पैरों के मध्य में सूजन आ जाती है जोकि कठोर, गर्म तथा पीड़ायुक्त होती है।

ग) पशुओं को साँस लेने में तकलीफ होती है व साँस लेने में घर्र-घर्र की आवाज आती है।

घ) रोगग्रस्त पशुओं में मुँह से अधिक मात्रा में लार निकलती रहती है।

ङ) मल के साथ रक्त का निकलना भी कभी-कभी पाया जाता है।

च) पशु चारा खाना बंद कर देता है एवं जुगाली भी नहीं करता है तथा सुस्त हो जाता है।

छ) दवाई के अभाव में रोगी पशु की प्राय: 24-48 घंटो में मृत्यु हो जाती है।

रोग का निदान व पहचान - इस रोग का निदान निम्नलिखित बातों के आधार पर किया जा सकता है :-

क) रोग के ऊपरलिखित लक्षणों को देखकर व प्रतिकूल परिस्थितियों के बारे में जानकर रोग का निदान सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

ख) इस रोग की आशंका से मृत पशुओं का शव परीक्षण पशुचिकित्सक से रोग पहचान के लिए करवाना चाहिए।

ग) रोगी पशु के रक्त की जाँच, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय के पशु विज्ञान केन्द्रों की पशु निदान प्रयोगशालाओं (सिरसा, भिवानी, महेन्द्रगढ़, अंबाला, करनाल, जींद व रोहतक) मे करवानी चाहिए। आवश्यकता होने पर हिसार की प्रयोगशाला में भी जाँच कराई जा सकती है।

रोग के रुप - मुख्यत: इस रोग को तीन रुपों में देखा जा सकता है :-

क) त्वचा रुप - इस रुप में रोगी पशु को अचानक तेज बुखार आता है तथा पशु चारा खाना बंद कर देता है। गले में सूजन हो जाती है जोकि बाद में जबड़ें, गाल और गर्दन तक फैल जाती है। पशु जीभ बाहर निकालकर साँस लेता है तथा मुँह से लार टपकने लगती है। इस रुप के आरम्भ होने के 2-3 दिनों के भीतर पशु को समय रहते पशु चिकित्सक से ईलाज न मिले तो पशु की मृत्यु हो सकती है।

ख) फेफड़ा रूप - इसमें गले में सूजन के साथ-2 रोगी पशु को साँस लेने में कठिनाई होती है तथा साँस लेते समय घर्र-घर्र की आवाज दूर से ही सुनाई देती है। इस रुप में रोगी पशु का मुँह खुला रहता है तथा नाक से गाढ़ा तथा फेनदार स्त्राव बहता है। इस रुप के कारण रोगी व्यस्क पशुओं की मृत्यु 4-6 दिनों में तथा कम आयु के बछड़ें/बछड़ियों एवं कटड़ें/कटड़ियों की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।

ग) आंत्र रुप - आंत्र रुप प्राय: फेफड़ा रुप के साथ होता है तथा रोगग्रस्त पशुओं में दुर्गन्धित पतला दस्त लग जाता है। पशु अति दुर्बल नजर आने लगता है और 4-5 दिनों में चिकित्सा के अभाव में पशुओं की मृत्यु हो जाती है।

पशुओं में इस रोग का बचाव एवं रोकथाम - गलघोटू एक संक्रामक रोग है तथा संक्रामक रोग इतने अधिक भयानक होते हैं कि तुरन्त पशु चिकित्सा के अभाव में रोगग्रस्त पशु देखते ही देखते मर जाते हैं। जिससे बहुत अधिक मात्रा में पशुओं की हानि होती है। पशुपालक निम्नलिखित बातों का पालन करके अपने पशुओं का इस रोग से सुगमतापूर्वक बचाव कर सकते हैं:-

क) रोग ग्रसित पशुओं का पृथकरण करके - रोग कि आशंका होने पर पशुपालकों को सबसे पहले स्वस्थ पशुओं को रोगग्रस्त पशुओं से पूर्णतया: अलग कर देना चाहिए तथा पशु चिकित्सक से रोगी पशु की जाँच तुरन्त करवानी चाहिए। रोगग्रस्त पशुओं को जो चारा व पानी दिया जाता है वह बचा हुआ चारा/पानी स्वस्थ पशुओं को कदापि नहीं देना चाहिए इसके अलावा रोगग्रस्त पशुओं का चारा/पानी स्वस्थ पशु से बिल्कुल अलग रखना चाहिए क्योंकि इक्ट्ठे रहने से स्वस्थ पशुओं में रोग अति शीघ्र फैलता है। पशुपालक रोगग्रस्त पशुओं को कभी भी जोहड़ में पानी पिलाने न लेकर जाएँ अन्यथा गाँव के अन्य पशुओं में भी यह रोग तुरन्त फैल सकता है।

ख) रोग की सूचना - रोग की आशंका होने पर पशुपालकों को तुरन्त प्रभाव से इसकी सूचना अपने गाँव के पशुचिकित्सा अधिकारी को देनी चाहिए जिससे सूचना मिलने पर पशुपालन विभाग रोगग्रस्त पशुओं का ईलाज सूचना प्राप्त होते ही शुरु कर दें तथा उपलब्धता के अनुसार तत्काल ही टीकाकरण की व्यवस्था कर सकें।

ग) रोग से मृत्यु होने पर पशु के शव एवं बिछावन का उचित ढंग से प्रबन्धन - इस रोग से मृत्यु होने पर पशु के शव को खुले स्थान, मैदान, चारागाह, नदी, नहर या तालाब में नहीं फेंकना चाहिए बल्कि 1.5-2 मीटर तक गहरा गड्ढ़ा खोदकर शव को तथा उससे सम्बंधित पदार्थ (बिछावन/मलमूत्र आदि) को इस गड्ढ़े में डालकर जला देना चाहिए अथवा इसी गड्ढ़े में ऊपर या नीचे की ओर चूने की 20-30 सै.मी. की तह बिछाकर ऊपर से मिटी से बंद कर देना चाहिए। इसके अलावा गड्ढ़े के चारों तरफ कांटेदार तार अथवा खाई लगा देनी चाहिए ताकि किसी भी स्वस्थ पशु को वहाँ पर जाने से रोका जा सके।

घ) **रोगग्रस्त पशु से सम्बंध रखने वाले बर्तनों तथा स्थान की सफाई** – जहाँ पर रोगग्रस्त पशु बाँधा गया हो, वहाँ के फर्श एवं दीवारों इत्यादि को अच्छी तरह साफ करके उसे 3 प्रतिशत कास्टिक या 5 प्रतिशत कार्बोलिक एसिड अथवा फिनाइल से धो देना चाहिए। रोगी पशु के संपर्क में आए बर्तनों व जंजीर आदि को गरम पानी में उबाल कर उसे जीवाणु रहित कर लेना चाहिए।

ङ) **परजीवी उपचार** – पशुओं का परजीवी उपचार निश्चित अवधि पर करवाते रहना चाहिए। परजीवी उपचार पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

च) **बछड़ा/बछड़ी तथा कटड़ा/कटड़ी से सम्बंधित सावधानियाँ** – कम उम्र के पशुओं को बीमार पशु का दूध पिलाने से उनमें भी यह बीमारी फैल सकती है इसलिए उन्हें भी अलग करना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि छोटी उम्र के पशुओं में बीमारी से लड़ने की क्षमता बहुत कम होती है तथा उनकी मृत्यु हो जाती है। कम उम्र के पशुओं को पहले तीन दिन का दूध अवश्य पिलाना चाहिए क्योंकि यह पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

छ) **मृत पशुओं का शव परीक्षण** – पशु की मृत्यु होने पर पशुपालक मृत पशु के शव का परीक्षण (पोस्टमार्टम) निकट के पशु चिकित्सालय से करवाएँ।

ज) **चारागाहों का परिवर्तन** – रोगी पशु द्वारा चरे हुए चारागाह अकसर रोग फैलने में विशेष रुप से सहायक सिद्ध होते हैं। अत: इन चारागाहों में स्वस्थ पशु को कदापि नहीं चरने देना चाहिए तथा जीवाणुओं से दूषित चारागाह में चूने का छिड़काव अथवा उन्हें जला देना चाहिए।

झ) **पशुओं का खानपान** – रोग फैलने के मौसम में पशुओं के खानपान का विशेष तौर पर ध्यान देना चाहिए तथा शीघ्र पचने वाले और पौष्टिक आहार अथवा हरा चारा, चोकर, दलिया इत्यादि के साथ-साथ स्वच्छ पानी का प्रयोग करना चाहिए।

ञ) **बीमार पशुओं के आने जाने से सम्बंधित ध्यान** – मेले और मंडियों में बीमार पशुओं को न लेकर जाए और न ही ऐसे पशुओं को खरीद कर लायें। बीमार पशुओं का आना जाना हर हालत में रोका जाना चाहिए।

ट) **पशुओं का टीकाकरण** – इस रोग से बचाव के लिए पशुओं में गलघोंटू टीका (एच.एस. ब्राथ, एच. एस. एडजुएण्ट व एच.एस. मिश्रित टीका) अवश्य लगवाना चाहिए। रोग फैलने के पूर्व स्वस्थ पशुओं में अगर इस रोग के फैलने की आशंका हो तो टीका लगवा लेने से पशु के अंदर 20-25 दिनों में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। जिससे इस रोग के होने की संभावना खत्म हो जाती है। गलघोटू बीमारी का टीका मई या जून में लगवाने से पशुओं को इस रोग से बचाया जा सकता है। पशुओं में मुँह-खुर के टीकें भी लगवाने चाहिए क्योंकि पिछले कुछ वर्षो से दोनों बीमारियाँ एक साथ देखी गयी है। रोग होने की दशा में भी स्वस्थ पशुओं को बीमार पशुओं से अलग करके गलघोटू का टीका तुरन्त लगवाएँ। प्रत्येक पशु के लिए अलग-अलग जीवाणुरहित सूई का प्रयोग करना चाहिए।

ठ) **नए खरीदें पशुओं को अलग रखना** – नए खरीदे1 पशुओं को अलग रखने की यह एक प्रकार की ऐसी व्यवस्था होती है जिसके अर्न्तगत समस्त नए खरीदें गये पशुओं को झुण्ड में मिलाने से पहले 15-20 दिनों तक अलग रखा जाता है जिससे यह पुष्टि हो जाती है कि वे इस संक्रामक रोग से पीड़ित/ग्रसित हैं या नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था को 'क्वैरनटाइन' कहते है तथा इस अवधि में यदि गलघोटू या अन्य किसी रोग के लक्षण दिखाई देते हैं तो ऐसे पशु को झुण्ड में मिलाने की बजाए अलग कर दिया जाता है।

बकरी पालन- छोटे किसानों के लिए वरदान

दिपिन चन्द्र यादव[1], देवेन्द्र सिंह[2], एवं सुशील कुमार[3]

[1] पशु उत्पादन व प्रबंधन विभाग, [2] विस्तार शिक्षा निदेशालय, [3] पशु पोषण विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रकृति ने छोटे किसानों को वरदान के रुप में बकरियाँ दी है। बकरी पालन मुख्यत: दूध एवं माँस के लिए किया जाता है। भूमिहीन, लघु एवं सीमान्त किसानों के लिए बकरी पालन एक अच्छा एवं लाभकारी रोजगार है। ये निम्नतम खाद्य ग्रहण करके मनुष्य को उच्च स्तर का आहार देती है। उच्च रोग प्रतिरोधी क्षमता और अधिक उत्पादन के कारण ये निर्धनों हेतु सर्वश्रेष्ठ पालतू पशु मानी जाती है। अकाल जैसी भीषण परिस्थिति में जब किसी अन्य तरह का पशुपालन दूभर हो जाता है तो बकरी पालन द्वारा निर्धन वर्ग के लोग अच्छी आय प्राप्त कर सकता है। बकरियों का दूध, बच्चों एवं रोगियों के लिए बहुत उपयोगी होता है क्योंकि प्रतिरोधी क्षमता अधिक होने के साथ-साथ इसका पालन भी आसानी से हो जाता है (सारणी 1)। अच्छे गुणों वाले दूध के साथ-साथ बकरियों से अच्छे प्रकार का माँस भी मिलता है जिससे किसान की अच्छी कमाई हो जाती है। बकरी के गोबर को मिंगन कहते है जिससे बढ़िया किस्म की खाद बनती है। इस पशु के मरने के बाद इसके खाल की कीमत भी अच्छी होती है। औसतन 4-5 बकरी पालने पर वर्ष भर में शुद्ध 7000-7500 रूपयें का लाभ हो सकता है।

सारणी 1 : बकरी के दूध की अन्य दुधारु पशुओं के दूध से तुलना

जाति	पानी	वसा	प्रोटीन	लौक्टोज	खनिज लवण	सम्पूर्ण ठोस
देसी गाय	86.40	4.70	3.30	4.90	0.68	13.60
भैंस	82.10	8.00	4.20	9.90	0.80	17.90
बकरी	88.20	4.00	3.40	3.60	0.78	16.80
भेड़	79.50	8.50	6.70	4.30	0.78	20.50

बकरियों की प्रमुख नस्लें जो कि किसानों के लिए अधिक उपयोगी होती है निम्नलिखित है :-

1. **जमुनापारी** - यह उच्च कोटि नस्ल की बकरी है जो मुख्यत: उत्तर प्रदेश के इटावा, मथुरा, आगरा, जनपदो में पाई जाती है। यह बकरी एक वर्ष में एक बार बच्चा देती है। बकरी का आकार बड़ा होने एवं दूध की अधिक उत्पादन क्षमता के कारण ये दूध एवं माँस दोनों प्रकार में उपयोगी होती है। मादा बकरी प्राय: एक वर्ष की उम्र में ग्याभिन हो जाती है। जून-जुलाई में ग्याभिन बकरी अक्तूबर-नवम्बर में बच्चा देती है और गर्मी भर दूध देती रहती है।

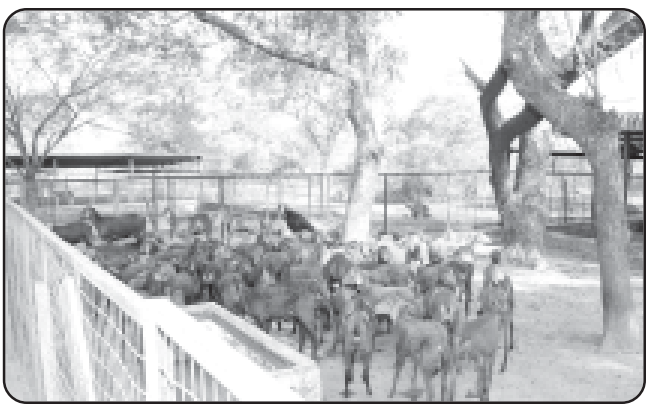

2. **बारबरी** - यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली एवं हरियाणा में मुख्यत: पाई जाने वाली प्रजाति है। यह 13-14 माह में दो बार ब्याती है और प्रति ब्यांत में दो या दो से अधिक बच्चे देती है। यह माँस एवं दूध दोनों के उत्पादन के लिए उपयोगी होती है।

3. **ब्लैक बंगाल** - ये पश्चिमी बंगाल एवं उड़ीसा में पायी जाने वाली उच्च नस्ल की है, यह बकरी उच्च कोटि का माँस प्रदान करती है।

इसके अलावा बीटल, मालबरी, गद्दी, सिरोही नस्ल की उपयोगी बकरियाँ देश के विभिन्न भागों में पाई जाती है। चेगु नस्ल की बकरी जो कश्मीर में पाई जाती है, इससे उच्च कोटि का ऊन 'पशमीना' प्राप्त होता है।

व्यस्क बकरों/बकरियों की आहार व्यवस्था - उत्तम चारे की व्यवस्था होने पर दाने की आवश्यकता कम होती है। अत: उत्तम चारे की व्यवस्था होनी चाहिए (सारणी 2)।

प्रजनन हेतु बकरों की आहार व्यवस्था - प्रजनन काल शुरु होने से लेकर 15 दिन बाद तक प्रजनन वाले पशुओं को 300 ग्राम दाना प्रतिदिन अतिरिक्त देना चाहिए।

ग्याभिन बकरी की आहार प्रणाली

सारणी 2 : बकरी पालन में आहार व्यवस्था

उम्र	दूध (शरीर भार का)	दाना	सूखा चारा	हरा चारा
0-1 सप्ताह	10 प्रतिशत	-	-	-
1-2 सप्ताह	15 प्रतिशत	-	-	-
2-4 सप्ताह	12 प्रतिशत	शरीर भार का 3 प्रतिशत	-	इच्छानुसार
4-8 सप्ताह	7 प्रतिशत	शरीर भार का 2.5 प्रतिशत	इच्छानुसार	इच्छानुसार
8-12 सप्ताह	3 प्रतिशत	शरीर भार का 2 प्रतिशत	इच्छानुसार	इच्छानुसार
3-6 माह	-	200-300 ग्राम	इच्छानुसार	इच्छानुसार
व्यस्क	-	400 ग्राम	इच्छानुसार	इच्छानुसार
ग्याभिन	-	400 ग्राम	इच्छानुसार	1-2 कि.ग्रा.
दूध हेतु	-	400 ग्राम	1-2 कि.ग्रा.	1-2 कि.ग्रा.
प्रजनन हेतु	-	400 ग्राम	1-2 कि.ग्रा.	1-2 कि.ग्रा.

ग्याभिन बकरी की आहार व्यवस्था - गर्भकाल के अंतिम दो महीने में अतिरिक्त दाने की आवश्यकता होती है। इस समय चराई की उत्तम व्यवस्था होने पर 250 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए।

बकरियों की आहार व्यवस्था - बकरियाँ अपने आहार हेतु मुख्यत: चराई पेड़ों की पत्तियों एवं छोटी-छोटी झाड़ियों पर अधिक निर्भर करती है। ये स्वभाव से ही घूम फिर कर घास चरना अधिक पसंद करती है, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में चारागाहों के अभाव के कारण इन बकरियों को पोषक पदार्थों की आपूर्ति के लिए उचित पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। गर्भ के अंतिम समय में अतिरिक्त आहार देने की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए।

- मौसम के अनुसार उपलब्ध चारे द्वारा।
- संरक्षित हरे चारे द्वारा।
- पेड़ों की पत्तियों एवं फलियों द्वारा।
- अनाज/खली इत्यादि मिलाकर तैयार किये हुए आहार द्वारा।

भेड़ और बकरियों में प्राणिरुजा रोग, लक्षण एवं निदान के उपाय

स्नेह लता चौहान[1], सोनू[2] एवं स्नेहिल गुप्ता[3]

[1]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2]पशु पोषण विभाग, [3]पशु परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भेड़ और बकरियों में कई प्राणिरुजा रोग है जो कि संक्रामक रोगों की श्रेणी में आते हैं जो पशुओं और मनुष्यों के बीच फैले हुए हैं। यह रोग मनुष्य में दूषित भोजन या पानी, साँस लेना, सन्धिपद वैक्टर जैसे मक्खियों, चीचड़, मच्छरों और कीटों की खपत से या संक्रमित जानवरों के साथ सीधे संपर्क के माध्यम से फैलते हैं।

रेबीज

- यह बीमारी भेड़-बकरियों को पागल कुत्तों के काटने से होती है। यह बीमारी विषाणु द्वारा होती है तथा पागल पशुओं या पागल कुत्तों के काटने व उनकी लार के द्वारा भेड़-बकरियों में हो जाती है।

- बीमारी हो जाने पर इसका इलाज संभव नहीं है इसलिए भेड़ पालकों को सुझाव दिया जाता है कि जब भी भेड़ बकरियों को पागल कुत्ता काट ले तो उसे अपने नजदीकी पशु चिकित्सालय में जाकर इसकी सूचना दें और समय पर स्वयं का टीकाकरण करवायें।
- प्रारंभ में मानव लक्षण में बुखार, सिर दर्द, भ्रम और असामान्य व्यवहार आदि लक्षण दिखाई देते हैं।
- आपको किसी जानवर ने काटा है तो तुरन्त पास के चिकित्सक से संपर्क करें।

ब्रूसीलोसिस

- यह एक जीवाणु जन्य रोग है जो भेड़ और बकरियों सहित सभी पशु प्रजातियों के साथ मनुष्य को भी प्रभावित करता हैं।
- यह रोग भेड़ और बकरियों में *ब्रुसेल्ला मेलिटेंसिस* के कारण होता है तथा अधिकतर वयस्क पशुओं में देखा जाता है। इस रोग से प्रभावित मादा पशु को गर्भावस्था में ही गर्भपात की समस्या उत्पन्न हो सकती है।
- पशुपालन एवं पशु चिकित्सा से जुड़े व्यक्ति, नवजात मेमने की जेर हटाते समय संक्रमित हो जाते हैं।

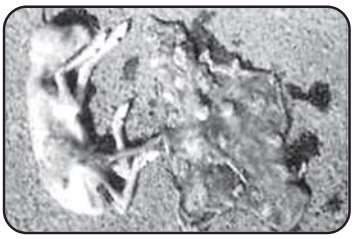

- रोगी मनुष्यों में कमजोरी व सुस्ती आने लगती है, ज्वर में उतार-चढ़ाव, सिर, माँसपेशियों तथा जोड़ों में दर्द रहता हैं।

संक्रामक पूयस्फोटिका

- लोगों में संक्रामक प्यूस्फोटिका 'ऑर्फ' विषाणु के कारण होता है।
- लोग आमतौर पर चेहरे और संक्रमित पशुओं के मुँह पर त्वचा के घावों के साथ सीधे संपर्क में आने से संक्रमित हो जाते हैं।

- यदि इन पर ध्यान न दिया जाये तो इनमें मवाद पड़ जाती है और कीड़ें भी हो जाते हैं।
- कीड़ों वाले घाव पर तारपीन के तेल को लगायें।
- प्रभावित पशु को अलग करें और महामारी की स्थिति में पशुशाला की अच्छे से साफ-सफाई रखें।

दाद

- ट्राइकोफाइटान प्रजातियों से प्रभावित भेड़ के संपर्क में आने पर भी यह रोग मनुष्यों में फैल जाता है।
- यह पशुओं के बाल/ऊन या त्वचा पर हो सकता है।

- दाद भेड़-बकरी की तुलना में भेड़ के बच्चे में अधिक सामान्य रुप में पाया जाता है।
- खुजली सबसे आम लक्षण है और सिर के आसपास स्पष्ट और वृत्ताकार चकत्तियाँ गंजेपन के साथ दिखाई देती है।

कैम्पाइलोबेकटिरियोसिस

- यह मनुष्यों में आंत्रशोथ का प्रमुख कारण होता है।
- यह अक्सर लोगों को दूषित पानी या अधपका माँस, क्रीम दूध या डेयरी उत्पादों की खपत से संक्रमित होता है।
- इससे संक्रमित लोगों में दस्त, बुखार, मतली, उलटी, पेट में दर्द, सिर में दर्द, माँसपेशियों में दर्द जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

क्यू ज्वर

- यह एक जीवाणु जन्य रोग है जो कि *कक्षक्सिएला बर्नेटी* के द्वारा फैलता है।
- यह श्वास या अतिरिक्त मार्ग के द्वारा मनुष्य को संक्रमित कर सकता है।
- इसमें बुखार, ठंड लगना, रात को पसीना, सिर दर्द, थकान और सीने में दर्द जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।
- यह जीवाणु रोगी पशु के सभी स्त्रावों या नवजात के साथ आई परतों तथा बाड़े की मिट्टी में पाया जाता है।
- रोगवाहक पशुओं, जेर तथा नि:स्त्राव आदि का उचित निस्तारण करना चाहिए।
- इस जीवाणु से गर्भवती महिलाओं में गर्भपात या समय से पहले प्रसव हो सकता है इसलिए गर्भवती महिलाओं को इन पशुओं से दूर रखना चाहिए।

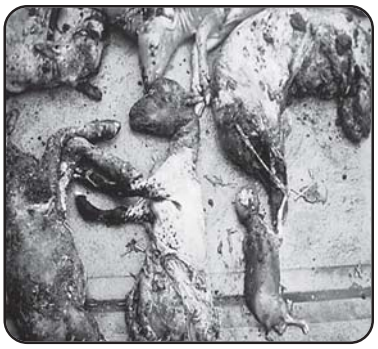

कैलामिडियोसिस

- यह भेड़-बकरियों में *कैलामिडिया अबोर्टस* जीवाणु के कारण होता है।
- कुछ पशुओ में यह जन्म के समय उत्ताक के साथ सम्पर्क में आने से गर्भपात हो जाता है।

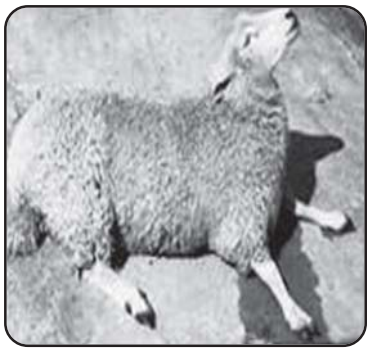

- लोगों में बुखार, सिर दर्द, शरीर में दर्द, लाल आँखें और निमोनिया जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।
- गर्भवती महिलाओं को इनके संपर्क से बचना चाहिए।

करयप्टोस्पोरिडिओसिस

- बीमार जानवरों के साथ, दूषित भोजन या मल या गंदे हाथों के सीधे संपर्क से लोगों में यह संक्रमण होता है।
- लोगों में इसके संक्रमण से पेट में दर्द, पानी दस्त, मतली और भूख की कमी जैसे लक्षण दिखाई देते हैं और इस रोग से अवयस्क पशुओं की वृद्धि रुक जाती है और उनका वजन बढ़ना भी कम हो जाता है।
- पशु बाड़े में काम करने वाले कर्मी भी इस रोग को फैलाने में भूमिका निभाते हैं।
- ये परजीवी फिल्टर में से भी पार हो जाते हैं तथा ठंडे या गरम पानी से भी प्रभावित नहीं होता।
- इसके इलाज हेतु शरीर कि रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ावा देना चाहिए।

चकरी रोग

- यह रोग गोवँशी पशुओं और भेड़-बकरियों में पाया जाने वाला संक्रामक रोग है। इस रोग की उत्पत्ति *लिस्टिरिया मोनोसाइटोजेन्स* नामक जीवाणु के संक्रमण से होता है।
- यह गर्म और आद्र जलवायु में ज्यादा फैलता है। इस रोग का प्रसारण संक्रमित भोजन, जल एवं वीर्य के द्वारा होता है यह मानव में भी पशुजन्य रोग है और संक्रमित दूध पीने से होता है।
- लोगों में हल्का तथा तेज बुखार, भूख की कमी, अधिक लार और माँसपेशियों की शिथिलता जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।
- मानसिक रुप से प्रभावित पशुओं में चक्कर एवं भोचक्कपन देखा जाता है जो भेड़ बकरियों में ज्यादातर दिखाई देता है।
- प्रभावित पशु अपने सिर को किसी सख्त वस्तु या दीवार से टकराने लगता है इसलिए प्रभावित पशुओं को सभी पशुओं से अलग रखना चाहिए।

प्राणिरुजा रोगों से बचने के उपाय - पशुओं में होने वाले संक्रामक रोगों से पशुपालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। यह संक्रामक रोग मनुष्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं इसलिए समय से नियमित टीकाकरण करके संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है तथा रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। रोगी पशुओं के प्रयोग में आने वाले उपकरणों और मनुष्यों से स्वस्थ पशुओं को दूर रखना चाहिए। बकरियों का दूध अच्छी तरह उबाल के पीना चाहिए। मादा पशुओं के गर्भपात होने पर उसके मलमूत्र व संक्रमित स्त्राव से बचना चाहिए। नवजात पशु इन संक्रामक रोगों के जीवाणु से ज्यादा प्रभावित होते हैं इसलिए उन्हें अपनी निगरानी में रखना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को पशुओं के संपर्क में नहीं आना चाहिए। पशुपालकों को पशुशाला का अच्छे से रख-रखाव करना चाहिए और पशु चिकित्सक से समय-समय पर सलाह लेनी चाहिए व ज्यादा समस्या हो तो पास के पशु चिकित्सालय में संपर्क करें।

गुम्बोरों रोग: लक्षण, कारक व बचाव के उपाय

स्नेह लता चौहान[1], सोनू [2] एवं स्नेहिल गुप्ता[3]

[1] पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2] पशु पोषण विभाग, [3] पशु परजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मुर्गियों में होने वाला गुम्बोरों रोग, आई.बी.डी. रोग के नाम से भी जाना जाता है। यह एक संक्रामक रोग है जो मुर्गियों में अचानक दिखाई देता है तथा थोड़े ही अन्तराल तक विद्यमान रहता है। मुर्गियों में इस रोग का प्रकोप 2 से 7 सप्ताह की आयु में सबसे अधिक पाया जाता है। यह रोग मुर्गियों को 10 सप्ताह की आयु तक भी प्रभावित कर सकती है। इस बीमारी के प्रकोप से मुर्गियों की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है जिससे मुर्गीपालकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। इस बीमारी की अवधि कम ही होती है तथा मुर्गियों में संक्रमण के 2-3 दिन के अन्दर ही लक्षण दिखाई देने लगने लगते है और थोड़े ही समय में मुर्गियों में अस्वस्थता और मृत्यु दर बढ़ने लगती है।

यह रोग मुर्गियों में बिरना नामक विषाणु के संक्रमण से होता है। इस विषाणु के दो उपप्रकार है - पहला इस बीमारी को पैदा करने की क्षमता रखता है और दूसरे से बीमारी पैदा नहीं होती है। यह विषाणु बहुत सी भोतिक अवस्थाओं और रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखता है। यह विषाणु 60 डिग्री के तापमान में भी 30 मिनट तक जीवित रह सकता है। इस विषाणु को फोर्मलिन और फिनाइल से नष्ट किया जा सकता है। इस रोग में मुर्गी के बरसा तथा लिम्फोइड भागों में लिम्फोसाइट्स की संख्या कम हो जाती है जिसके कारण प्रभावित मुर्गियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।

कारण - यह विषाणु संक्रमण के पश्चात् बीमार मुर्गी के मल त्याग द्वारा वातावरण में 2 सप्ताह तक विसर्जित होता रहता है। इस विषाणु के फैलाव के अनेक माध्यम है जिनमें से कुछ इस प्रकार है :-

- दूषित दाना और पानी के पीने से यह रोग स्वस्थ मुर्गियों में फैलता है।
- आँख और साँस के माध्यम से भी यह विषाणु स्वस्थ मुर्गियों में फैल सकता है।
- इस विषाणु से संदूषित उपकरण, मुर्गी गृह तथा मुर्गी आवास में काम करने वाले व्यक्तियों के कपड़ों के माध्यम से भी यह विषाणु फैल सकता है।
- कीड़ें मकोड़ों व बिछावन पर पलने वाली बरुथियाँ (माईट) से भी यह विषाणु स्वस्थ मुर्गियों में फैल सकता है।
- जंगली पशुओं तथा चूहों से भी इस विषाणु का फैलाव हो सकता है।

लक्षण - यह बीमारी 3 से 7 सप्ताह की मुर्गियों में ज्यादातर पाई जाती है तथा 5 सप्ताह वाली मुर्गियों में इस बीमारी का सबसे अधिक प्रकोप होता है। इस बीमारी से ग्रसित मुर्गियों में पाये जाने वाले लक्षण कुछ इस प्रकार हैं :-

- इस बीमारी से ग्रसित मुर्गियाँ आवास गृह के कोने में सिर झुकाए खड़ी रहती हैं।
- चूजे कभी-कभी थर्राते या कांपते हैं।
- सफेद या पीले रंग के दस्त लग जाते हैं जो अधिकतर पानी जैसे होते हैं।
- चूजे एक स्थान पर आँख बंद कर सुस्त खड़े रहते हैं।
- पँखो की बनावट बिगड़ जाती है।
- प्रभावित मुर्गी या चूजे कुछ समय बाद एक तरफ गिर जाते है और कुछ समय तक जीवित रहने के पश्चात मर जाते हैं।
- शरीर का तापमान बढ़ जाता है और चूजे खाना कम कर देते हैं और पानी भी कम पीते हैं।
- इस बीमारी के कारण मुर्गियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिसके कारण मुर्गियाँ और भी बीमारियों का शिकार होती है।

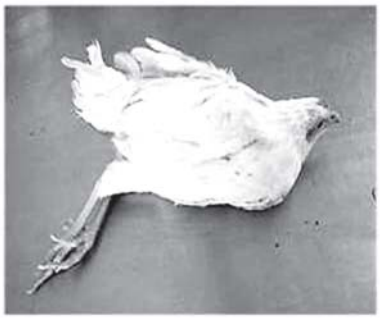
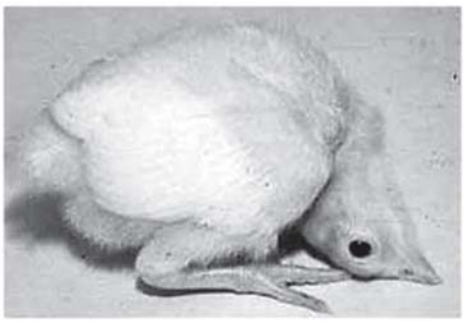

निदान – मुर्गियों में इस रोग के प्रकोप होने की आयु एवं लक्षणों तथा अन्य सम्बंधित जानकारियों से इस बीमारी का निदान सरलतापूर्वक एवं सफलतापूर्वक किया जा सकता है। रोग के पुष्टिकरण हेतु विषाणु का एलिसा परीक्षण विधि द्वारा जाँच करवाना बहुत जरुरी है।

उपचार– इस बीमारी में तुरन्त डश्वक्टर की सलाह से चिकित्सा करवानी चाहिए। बीमारी का प्रकोप होने पर मुर्गियों में मृत्युदर कम करने तथा रोगप्रतिरोधक क्षमताबढ़ाने के लिए यह उपाय करने चाहिए।

- यदि मुर्गियों में तेज बुखार है तो ऐसी स्थिति में बुखार कम करने के लिए पेरासिटामोल 500 मि.ग्रा. की एक टेबलेट प्रति 200 मुर्गियों के हिसाब से पानी में पिलानी चाहिए।
- विटामिन सी की 20 ग्राम मात्रा प्रति क्विंटल मुर्गी दाने में या 12 ग्राम विटामिन सी प्रति 10 लीटर पानी में देना चाहिए।
- पानी में जामुन या गन्ने का सिरका प्रयोग करना चाहिए।
- बीमार मुर्गी को एंटीबायोटिक जैसे एन्रोफ्लोक्सासिन, सिप्रोफ्लोक्सासिन आदि पिलानी चाहिए ताकि मुर्गियों को जिवानुजनित रोगों से बचाया जा सके।
- पीने के पानी में कीटाणुनाशी का इस्तेमाल नियमित रुप से करते रहना चाहिए।
- मुर्गी गृह में बिछावन पर कीटाणुनाशी दवाइयों का उपयोग नियमित रुप से करते रहना चाहिए।

रोकथाम – चूजों को इस बीमारी से बचने के लिए 14 दिन तथा दोबारा 35 दिन की आयु पर गुम्बोरों के टीकें का घोल एक बूँद आँख और एक बूँद नाक के जरिये देना चाहिए। जिन मुर्गियों में गुम्बोरों का टीकाकरण हुआ हो, उन मुर्गियों के अंडों से प्राप्त चूजों का टीकाकरण का लाभ अधिक होता है। यह विषाणु मुर्गियों के मल–त्याग में अधिक संख्या में निकलता है और आसपास की वस्तुओं जैसे उपकरण, मुर्गी गृह के बिछावन को दूषित करता है।

इस विषाणु की रोकथाम के लिए जो उपाय अपनाने चाहिए वो इस प्रकार हैं :–

- मुर्गी समूह के एक समूह के पूरा होने पर मुर्गी गृह की साफ–सफाई तथा रोगाणुनाशक दवाई का प्रयोग अच्छे से करना चाहिए।
- एक साथ अन्दर व एक साथ बाहर वाली पद्धति से मुर्गियाँ पालनी चाहिए जिससे एक आयु की मुर्गियाँ एक साथ पलती रहें तथा जब मुर्गी गृह को खाली

किया जाए तब एक साथ सारे मुर्गी समूह को वहाँ से हटा दिया जाए।

- मुर्गी आवास में अनावश्यक व्यक्तियों तथा वाहनों के आने जाने पर रोक लगानी चाहिए।
- इस विषाणु से संदूषित बिछावन तथा मुर्गी दाना को या तो जला देना चाहिए या फिर गहरे गड्ढ़े में दबा देना चाहिए।
- विषाणु से संदूषित पानी को भी रोगनाशक के द्वारा संदूषित रहित करना चाहिए।
- मुर्गी गृह की आपसी दूरी पर विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि गृहों की दूरी कम रखने से तथा उनमें बहुप्रजातियाँ कुक्कुट पालने से इस विषाणु का एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में फैलने का खतरा रहता है।
- रोग के प्रकोप के उपरांत मल-मूत्र तथा बिछावन को कुक्कट गृह में ही फोरमेलिन के 2 प्रतिशत घोल से उपचारित करना चाहिए।
- मुर्गी गृहों को नए चूजे रखने से पूर्व धुमनीकरण (फ्युमीगेशन) करना चाहिए जिसके लिए 20 ग्राम पोटेशियम परमेंगनेट (लाल दवाई) को 40 मि.ली. फोरमेलिन के घोल के साथ मुर्गी गृह के 100 क्यूबिक क्षेत्रफल के हिसाब से प्रयोग करना चाहिये।

अंग क्रियाशीलता के जैव रासायनिक परीक्षण

शालिनी शर्मा एवं निर्मल सांगवान

पशु देहिकी एवं जीव रसायन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशु के शरीर में यकृत व गुर्दे अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। यकृत शरीर में रक्त में शर्करा का रखरखाव, चयापचयों का विषहरण, प्लाज्मा प्रोटीन का संश्लेशन, पित्त का स्राव, पित्त अम्ल का संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य करता है। पशु के शरीर में गुर्दे मुख्यत: चयापचय अपशिष्ट को रक्त से फिल्टर करने का कार्य करते हैं। अत: इनकी सुचारु रुप से क्रियाशीलता अति आवश्यक है। यकृत एवं गुर्दे की क्रियाशीलता का अनुमान जैव रसायनों के आंकलन द्वारा लगाया जा सकता है।

विभिन्न परिस्थितियों में यकृत व गुर्दे की कार्य क्षमता में कमी आ जाती है और इस कारण से पशु के शरीर में असामान्य लक्षण आने लगते हैं। ऐसे असामान्य लक्षण आने पर यकृत व गुर्दे की जाँच के लिए रक्त के नमूने में जैव रासायनिक तत्वों के मापन से इन अंगों की कार्य प्रणाली का पता लगाया जा सकता है।

यकृत की क्रियाशीलता के जैव रासायनिक परीक्षण

1. यकृत के एंजाइमों का रक्त/सीरम में अनुमान
2. रक्त/सीरम में कुल प्रोटीन का अनुमान
3. रक्त/सीरम में बिलीरुबिन का परीक्षण

1. **यकृत के एंजाइमों का अनुमान** – यकृत के गलने/खराब होने पर सीरम अमीनों ट्रांसफेरेज, अस्पोर्टेट अमीनों ट्रांसफेरेज, ओर्निथिन कैरबमोयल ट्रांसफेरेज, ग्लूटामिक डिहाइड्रोजन, सोर्बिटोल डिहाइड्रोजिनेज एवं अर्जीनेज नामक एंजाइमों की मात्रा बढ़ जाती है।
2. **रक्त में प्रोटीन का अनुमान** – रक्त/सीरम में प्रोटीन की मात्रा में असामान्यताएँ किसी विशिष्ट बीमारी का संकेत नहीं देती परन्तु इससे शरीर में किसी विकृती का संकेत मिलता है। प्रोटीन अधिकता पशुओं के शरीर में पानी की कमी होने पर, संक्रमण, जीर्ण रोग, आयु के बढ़ने के साथ इत्यादि परिस्थितियों में पायी जा सकती है। प्रोटीन की कमी कुपोषण अथवा कम प्रोटीन युक्त भोजन करने पर, पाचन व अवशोषण में समस्या, भूख न लगना, यकृत की खराबी, कैंसन होने पर, गर्भावस्था व दुग्धावस्था में रक्त का नुकसान/क्षति होने पर, कम आयु वाले पशुओं में, इत्यादि परिस्थितियों में पायी जा सकती है।
3. **बिलीरुबिन का परीक्षण** – पीलिये में कुल बिलिरुबिन बढ़ जाता है। शरीर में पीलिया होने के कई कारण हो सकते हैं जैसे लाल रक्त कणिकाओं में असामान्यताएँ, एंजाइम दोष, हीमोलिटिक अरक्तत्ता, दवाओं का प्रभाव, संक्रामक जीवाणु, यकृत का दोषपूर्ण चयापचय इत्यादि। बिलीरुबिन का माप, पीलिये के उपनिदान में सहायक होता है।

लाल रक्त कणिकाओं की टूट-फूट तिल्ली में होती है। लाल रक्त कणिकाओं के हीमोग्लोबिन के हीम से बिलीरुबिन का निर्माण होता है। यह बिलीरुबिन यकृत से छोटी आँत में आ जाता है और फिर गुर्दे से होकर मूत्र में व आँतों से मल में आ जाता है। मल तथा मूत्र का सामान्य रंग इसी के कारण होता है। बिलीरुबिन की मात्रा पीलिये में बढ़

जाती है, इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि मिथाइल डोपा, हिमोप्रोटोजॉन कीटाणु, यकृत चयापचयन में दोष इत्यादि।

गुर्दे रक्त से अवशिष्ट पदार्थों का निष्कासन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब गुर्दों की क्रियाशीलता सुचारु रुप से नहीं चलती तब जैव रसायनों का गुर्दो द्वारा निष्कासन संपूर्ण रुप से नहीं हो पाता, इन परिस्थितियों में इन अवशिष्टों की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है।

गुर्दों के प्रभावित होने पर कौन-से जैव रासायनिक पदार्थों की मात्रा रक्त में बढ़ जाती हैं?

रक्त में यूरिया, क्रिएटिनिन, बढ़ जाते हैं।

1. **यूरिया** - यह प्रोटीन ग्रहण का आंतरिक पदार्थ है। ब्लड यूरिया नाइट्रोजन ब्लड यूरिया का लगभग आधा होता है। यूरिया की अधिकता शॉक/हाइपोटेंशन, पशुओं के शरीर में पानी की कमी होने पर, आहार प्रोटीन की अधिकता, मूत्र प्रणाली में छिद्र, मूत्र प्रणाली में रुकावट इत्यादि परिस्थितियों में पायी जा सकती है।
2. **क्रिएटिनिन** - यह माँसपेशी के चयापचयन का आंतरिक पदार्थ है। पेशियों से इसका निश्चित मात्रा में निष्कासन होता रहता है।

क्रिएटिनिन की अधिकता - माँस का सेवन करने पर, दवाओं के सेवन से इत्यादि परिस्थितियों में पायी जा सकती है। नर पशुओं में क्रिएटिनिन की मात्रा मादा पशुओं की तुलना में अधिक होती है।

क्रिएटिनिन की कमी - कुपोषण में, माँसपेशी के क्षीण होने पर हो जाती है। मादा प्राणिओं में भी यह नरों की अपेक्षा कम पायी जा सकती है।

3. **मूत्र की मात्रा का अनुमान** - मूत्र की अधिक मात्रा निम्न कारणों से हो सकती है :-

- ➤ अत्यधिक जल ग्रहण करने पर
- ➤ ठण्ड में
- ➤ डाइयूरेटिक दवाई लेने पर
- ➤ गुर्दे के जीर्ण रोग होने पर
- ➤ डायबिटीज में
- ➤ हॉर्मोन असंतुलन होने पर

मूत्र की कम मात्रा निम्न कारणों से हो सकती है :-

- ➤ दस्त होने पर पशुओं के शरीर में पानी की कमी होने के कारण
- ➤ उलटी होने पर
- ➤ बुखार होने पर
- ➤ पानी के कम सेवन की स्थिति में
- ➤ मूत्र प्रणाली में पथरी होने पर

मूत्र की मात्रा पशुओं के पसीने व श्वास में तरल के नुकसान द्वारा भी निर्धारित होती है।

अत: उपर्युक्त जाँच करवाने से पशुओं के अंगों की क्रियाशीलता का पता लगाया जा सकता है। इससे उचित उपचार में बहुत मदद मिलती है।

बटेर पालन एक लाभदायक व्यवसाय

रजनी कुमारी, संजय कुमार, ऋचा एवं विनय
पशु जैव प्रौद्योगिकी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मुर्गी पालन क्षेत्र में बटेर पालन एक लाभदायक व्यवसायिक विकल्प है। निम्नलिखित विशेष गुणों के कारण यह व्यवसाय अत्यंत लाभप्रद है :-

1. बटेर के लिए मुर्गी पालन की अपेक्षा कम स्थान की आवश्यकता होती है। छोटे आकार के कारण (व्यस्क शरीर भार 200-250 ग्राम) इसका संचालन आसान होता है, साथ ही दाने की खपत भी कम होती है। एक मुर्गी पालने के निर्धारित स्थान में 5-6 बटेर रखे जा सकते हैं।
2. बटेर की शारीरिक बढ़त तीव्र होती है तथा ये 5 सप्ताह में खाने योग्य हो जाते हैं तथा मादा बटेर 41-45 दिन के आयु से ही अंडा देना आरम्भ कर देती है और 60वें दिन तक पूर्ण उत्पादन की अवस्था में आ जाती है। एक वर्ष में बटेर औसतन 280-300 अण्डें देती है।
3. बटेर से एक वर्ष में उसकी 5-6 पीढ़ीयाँ प्राप्त की जा सकती हैं।
4. बटेर के अण्डें और माँस में संतुलित मात्रा में अमीनों अम्ल, विटामिन, वसा और खनिज लवण की मात्रा होती है। बटेर के अण्डें का वजन 9-14 ग्राम के लगभग होता है। अण्डें का रंग चित्तीदार (बहुरंगीय एवं सफेद) होता है, लेकिन सफेद रंग के भी अण्डें पाये जाते हैं। बटेर के अण्डें गुणवत्ता में मुर्गी के अण्डें से कम नहीं होते हैं।

जापानी बटेर के अण्डें की गुणवत्ता/संगठन

पानी	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेट	ऊर्जामान
24 प्रतिशत	13 प्रतिशत	11 प्रतिशत	1 प्रतिशत	649 मि.जू./100 ग्राम तरल

बटेर से प्राप्त माँस में 20.54 प्रतिशत प्रोटीन, 3.85 प्रतिशत वसा लवण, 0.50 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 1.12 प्रतिशत खनिज लवण पाये जाते हैं। इसके साथ-साथ बटेर के अंडों में कॉलेस्ट्रोल की मात्रा सबसे कम 18.08 मि.ग्रा./ग्रा. योक में होती है जबकि यही कोलेस्ट्रोल असील में 22.9, कड़कनाथ में 22.01, आई.आर.-3 ब्रॉयलर में 20.87, आई.एल.आई.-80 में 19.32, और गिनी फाउल में 18.77 मि. ग्रा. प्रति ग्रा. माँस में पाया गया है।

5. मुर्गियों की अपेक्षा बटेरों में रोग कम होते हैं। इसी कारण इनको किसी प्रकार के टीकें लगाने की आवश्यकता नहीं होती। अभी तक इनमें कोई विशेष बीमारी सामने नहीं आई है।

अपने कम वजन, कम जगह की आवश्यकता, शीघ्र एवं तीव्र बढ़वार, शीघ्र वयस्कता की प्राप्ति, अधिक अण्डें एवं माँस उत्पादन की क्षमता के कारण बटेर पालन जापान,

सिंगापुर, हाँगकाँग, फ्राँस, इंग्लैण्ड, इटली आदि देशों में व्यावसायिक तौर पर अधिक प्रचलित है। विश्व के विकासशील तथा अल्प विकसित देशों के लिए बटेर पशु प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है, अत: आवश्यकता इसको वैज्ञानिक ढंग से पालने की है।

बटेर पालन को अधिक लाभप्रद बनाने के लिए इनकी उचित प्रजनन व्यवस्था अपनाना आवश्यक है। उचित समय पर प्रजनन न होने से उत्पादन क्षमता में कमी आती है तथा बटेर की उत्पादकता उम्र भी कम हो जाती है। बटेर प्रजनन व्यवस्था के अन्तर्गत मुख्य रूप से बटेर का चयन एवं उपयुक्त प्रजनन विधि का अपनाना है।

बटेरों में चयन सामान्यत: सामूहिक वरण या फिर व्यक्तिगत वरण विधि द्वारा किया जाता है। इसमें बटेर का चयन उसके उत्पादन (लक्षण-प्रारूप) के आधार पर किया जाता है। यह सर्वोत्तम विधि है एवं अनेक परिस्थितियों में सर्वाधिक तीव्र परिणाम देने वाली होती है। इसके लिए बटेर की व्यक्तिगत पहचान आवश्यक है। बटेर की व्यक्तिगत पहचान के लिए उनके पँखों में विशेष रूप से तैयार धातु की हल्की और पतली पँख पट्टी (विंग बैंड) लगाई जा सकती है। यह नवस्फुटित चूजे के किसी एक पँख की झील्ली पर लगाई जाती है जिस पर पहले से ही नम्बर लिखे होते हैं

नर-मादा अनुपात-बटेर से निषेचित अण्डें प्राप्त करने के लिए नर और मादा का अनुपात 1:1 अथवा 1: 2 होना चाहिए। यदि बटेरों को समूह में रखना हो तो केवल एक नर बटेर 3 से 4 मादा बटेर के लिए पर्याप्त होता है।

निषेचित अण्डें प्राप्त करने के लिए 10 से 24 सप्ताह की आयु के बटेर उत्तम है। समूह में समागम कराये जाने की स्थिति में नर को हटाने के बाद भी मादा की निषेचित अंडा देने की क्षमता 7-10 दिन रहती है, लेकिन उत्तम निषेचित अण्डें प्राप्त करने के लिए नर को हटाने के बाद केवल 3 दिन तक ही अंडा एकत्र करना चाहिए।

चूजों एवं वयस्क बटेरों की देखभाल - बटेर के चूजों को पालने के लिए अच्छा ब्रूडर गृह तथा तापक्रम नियमित रखने की आवश्यकता होती है। शुरुआत में बटेर के चूजों को प्रथम दो सप्ताह बहुत ही नाजुक दौर से गुजरना पड़ता है क्योंकि एक दिन के चूजे का शारीरिक भार 6 से 7 ग्राम का होता है। यह चूजे स्ट्रेस के प्रति बहुत ग्राही होते हैं। शुरु के दो सप्ताह बटेरों की उचित तापमान व खान-पान अच्छा न होने पर मृत्युदर बढ़ सकती है। साथ ही साथ बढ़वार भी अच्छी नहीं होती है। बटेर में 0-3 सप्ताह ब्रूडिंग अवस्था, 4-5 सप्ताह बढ़वार अवस्था और 5 सप्ताह के बाद व्यस्क अवस्था होती है।

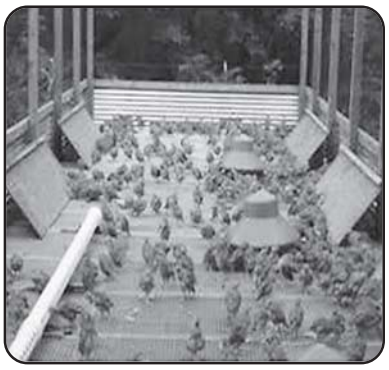

प्रकाश व्यवस्था - व्यस्क बटेरों या अंडा देने वाली बटेरों के लिए 16 घंटे का प्रकाश तथा 8 घंटे का अंधेरा ठीक रहता है। बटेरों को मोटा करने के लिए बाजार ले जाने से 7-10 दिन पूर्व से 8 घंटे रोशनी और 16 घंटे अंधेरे में रखना चाहिए।

अंडा उत्पादन - मुर्गियों से 75 प्रतिशत अंडा उत्पादन सुबह के समय होता है जबकि बटेर अपने दैनिक अंडा उत्पादन का 70 प्रतिशत अपराहन 3-6 के मध्य देती है तथा शेष 20 प्रतिशत अंधेरे में देती है। अंडों को टूटने से बचाने के लिए दिन में कम से कम 3 बार इकट्ठा करना चाहिये। पकड़ने में सावधानी बरतनी चाहिए। साधारणत: अंडा देने वाली बटेरों को छेड़ें नहीं जब तक कि इसकी आवश्यकता न हो। रोज-रोज पकड़ने से अंडा देने की शरुआत देर से होती है। इसके साथ ही अंडा उत्पादन गिर जाता है और मृत्युदर बढ़ जाती है।

भोजन व पानी की व्यवस्था- पूर्णतया संतुलित आहार प्रचूर मात्रा में उपलब्ध करवायें। प्रचूर मात्रा में साफ सुथरा पीने योग्य जल उपलब्ध करवायें क्योंकि जल बहुत आवश्यक है। सभी प्रकार के तत्वों को उपलब्ध करवाने में संतुलित आहार बनाने की विधि सारणी में देखें।

उत्तम क्षमता के लिए - बच्चे निकालने वाले अंडों के उत्पादन के लिए नर तथा मादा 10-28 सप्ताह की आयु के बीच होने चाहिए। एक नर बटेर तीन या इससे कम मादाओं

चूजों एवं व्यस्क बटेरों का संतुलित आहार बनाने के लिए निम्न मिश्रणों को मिलायें।

	संघटक (भाग/100 भाग)	बटेर	स्टार्टर 0-3 सप्ताह	लेयर या ब्रीडर क्वेल हेतु	
		I	II	I	II
1	ब्रॉयलर कंसन्ट्रेट	–	56.00	–	45.00
2	मक्का	42.00	20.00	45.00	25.00
3	चावल कनी	15.00	12.00	10.00	10.00
4	चावल घूटा	–	–	6.00	–
5	मूँगफली की खल	15.00		12.00	–
6	गेहूँ का चोकर		12.00		15.00
7	सोयाबीन की खल	15.00	–	10.00	–
8	मछली का चूरा या माँस का चूरा	10.00	–	10.00	–
9	डाईकैल्क्रियम फास्फेट	1.50	–	1.50	–
10	चूना पत्थर/सीपी का चूरा	1.00	–	5.00	5.00
11	सादा नमक	0.30	–	0.30	–
12	विटामिन-खनिज लवण	0.20	–	0.20	–
	कुल	100.00	100.00	100.0	100.00

से मिलाना चाहिए। अण्डें नर तथा मादाओं के मिलाने के कम से कम चार दिन पश्चात् से बचाने या इकट्ठे करने चाहिए और नर अलग कर लेने के पश्चात् तीन दिन तक बचाये जा सकते हैं। पक्षियों को प्रजनन राशन देना चाहिए जोकि पूर्णतया संतुलित हो। बटेरों की चोंच तथा पैर के नाखून को थोड़ा काट देना चाहिए ताकि एक दूसरे को जख्मी न कर पायें।

टीकाकरण- बटेरों में अभी तक किसी प्रकार का टीका नहीं लगाना पड़ रहा है क्योंकि बटेर काफी रोग प्रतिरोधकता रखती है जबकि मुर्गियों में ऐसा कम पाया जाता है। कुछ हद तक एन्टीबॉयेटिक्स तथा एन्टीस्ट्रेस घोल दे सकते हैं। अधिक बढ़वार के लिए 5 प्रतिशत केसीन (दूध को फाड़कर उसका सफेद भाग) सूखा करके बटेर के दाने में मिलाने से मृत्युदर कम होती है, साथ ही इसकी बढ़वार भी बहुत अच्छी होती है।

अन्य प्रबन्ध- बटेरों के लिए ज्यादा गर्मी और ज्यादा सर्दी दोनों ही मौसम हानिकारक होते है। ऐसी दशा में अंडा उत्पादन कम हो जाता है या बटेर पतली झील्ली युक्त अंडा देना शुरु कर देती हैं जिससे हानि अधिक होती है। ऐसी दशा में उचित तापमान देना चाहिए जो कि 55-75^0 फारनहाइट (13-24^0 से.) के आसपास होना चाहिए। साधारणत: बटेरों में किसी भी उम्र पर टीकें नहीं लगाये जाते। अधिक अंडा उत्पादन हेतु पशु चिकित्सक या मुर्गी विशेषज्ञ की संस्तुति के आधार पर विटामिन्स मिक्सचर जैसे विमराल, फैमीटोन, कैल्डीसोल इत्यादि देना चाहिए। यदि इन सभी उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर बटेर पालन किया जाये तो प्रत्येक पक्षी से प्रतिमाह अधिक कमाई की जा सकती हैं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस स्थान पर विपणन करते हैं।

Bovicure Pharma Pvt. Ltd.

(Veterinary Care Division)

WORKS : 192, SAHA IND. AREA-133 104

Mastitis is the Biggest Challenge in Indian Dairy Industry,
Now Mastitis gone a Single Shot Treatment with

First Time

BOXIM-TAZO

Sterile Ceftizoxime Sodium 3000 mg. +Tazobactom Sodium 375 mg.

Available

Dosage :
5 to 10 mg/kg of b.wt by intravenous route only If required to be repeated within 72

MIC Maintain in udder for more than 5 days Kills the all causative agent of mastitis	
Staphylococcus Spp	89%
Streptococcus Spp	35%
E-Coli	13%
Corynaebacterium	8%
Bacillus	5%

Presentation : 3.375 gm.

Use along with Bovit-H inj.5 ml. or 10 ml. and BSMS Fibro-Kit surely helps to prevent fibrosis

BEST COMBINATION IN INDIA for easy let down of milk
Galactagogue, Jivanti & Shatavari

Chelated

Bostcal Gold

with Ashwagandha **Bolus**

Dosage : 2 Bolus daily for 10 days

For Easy Milk let down &
The Milk Booster Formula

THE TRUMP CARD AGAINST GTI & RTI

First time in India

BCEFT-TAZO INJECTION

(with Dispo Pack)

Work within 5 minutes

1.125 gm.

The Superior Combination

Ceftiofur Sodium 1000 mg.
Tazobactam Sodium 125 mg.

Indication

Genital Tract Infections
* Metritis * Endo Metritis *Pyometra *Repeat Breeding

Respiratory Tract Infections
* Haemorrhagic Septicaemia *Pneumonia *Shipping Fever

Dosage : Large Animals
1-2 mg./kg. body wt. Once Daily
For 3-5 DAYS
Administration I/M Route Only

Presentation : 1.125 gm.

To Correct Negative Energy Balance for Better Milk Production

Enershot

Powder

Complete Energy Shot for Milk Production with Electrolytes

Indication : - NEB, Ketosis, Milk Fever, Anoestrus, Stress any origin, Poor Milk Production & Fat Percentage

Presentation : 20,5 & 1 Kg.

Damaged quarter | Teat Shrinkage | Fibrosis | Loss of production

Bovit-H Gold

- Improves count & function of W.B.C.
- Aids in fighting infection - Quick Recovery
- Improves the quality & quantity of sperm count in semen
- Reduces stress
- Avoids repeat Breeding

Each ml. contains :	
Vitamin A	50,000 IU
Vitamin H	500 mcg.
Vitamin D3	10,000 IU
Vitamin E	50 mg.
Vitamin B12	20 mcg.
Selenium	10 mg.
Energy	65 Kalori

With Tulsi

Packing : 100, 250, 500 ml, 1 Ltr. & 5 Ltr.

BEST ECOBOLIC & UTERINE CLEANSER

UTRIFRESH-DS

Retention of placenta (ROP) | Irregular lochial discharge
Uterine infections like metritis, pyometra etc. | Delayed involved of the uterus

Each ml. contains extracts of :		
Shigru	(Moringa pterygosperma)	20 mg.
Kalihari	(Gloriosa superba)	18 mg.
Vasaka	(Adhatoda vasica)	17 mg.
Sudapa	(Ruta graveolens)	15 mg.
Harmala	(Peganum harmala)	15 mg.
Musta	(Cyperus rotundus)	15 mg.

Dosage :
Cow, buffalo & Mare : In case of ROP 250 ml. twice on first day, followed by 100 ml. once a daily for the next three days.
In other conditions 50 ml. twice daily

Packing Available : 500 ml. & 1 Litre

Successful calving - Healthy Lactation

Ionic Calcium with extra Advantage of Minerals, Amino Acids & Herbal Extracts

Bostcal™ Gold Gel

Ionic Calcium With Electrolytes formulation for Hypocalcemia & Milk Production

- **Glycerin** Helps in Production of Energy
- **Herbal Extracts** For easy to milk let down
- **To Maintain Optimum Milk Production** Administrate one bottle per animal once in a month
- **Loss of Milk Production** Administer one bottle per Animal daily for 3 to 5 days
- **Amino Acid** Increase Milk Protein and fat in dairy cattle.

<<<< *Improved Formulation*
Better palatability Homogenous Gel no setting at bottom

Presentation : 300 ml.

First time in India

THE TRUMP CARD AGAINST MASTITIS

Btum-Tazo INJECTION 4.5 gm.

Work within 30 minutes

- Mastitis
- R.T.I. & U.T.I.
- Surgical Prophylaxis
- Skin and soft tissue infection
- Septicemia
- Meningitis

Each vial contains :
(Sterile) Cefoperazone Sodium IP eq. to anhydrous Cefoperazone 500 mg.
(Sterile) Tazobactam Sodium eq. to Tazobactam 62.50 mg.

Each vial contains :
(Sterile) Cefoperazone Sodium IP eq. to anhydrous Cefoperazone 4000 mg.
(Sterile) Tazobactam Sodium eq. to anhydrous Tazobactam 500 mg.

562.5 mg

4.5 gm

Dosage : Large Animals 5-10 mg./kg. b.wt.
Route : IM/IV use only

Metho Chelated

Bostcal Gold

SUSPENSION VETERINARY

Metho Chelated Fortified with Vitamin H

COMPOSITION
Each 1000 ml contains :-

Calcium	35000 mg
Phosphorus	17500 mg
Vitamin A	50000 IU
Vitamin D3	300000 IU
Vitamin B12	2000 mcg
Zinc MHA	15000 mg
Copper MHA	5000 mg
Cobalt	100 mg
Potassium Iodide	100 mg
Carbohydrate	180000 mg
Vitamin H	100 mcg
Energy value-	
Kilo calories	1050
Kilo joules	4398

1 Ltr 5 Ltr 20 Ltr

पशु के लिए दानेदार खनिज मिश्रण

Bomix Gold

Dosage : 30 - 40 gm / days / cows & Buffaloes
25 gm / day / calf, sheep & goat for b.wt. gain
1.5 kg. mix in 100 kg. of feed

Available in 1 kg., 5 kg. & 10 kg.,25 kg.

25 Kg. 5 Kg. 1 Kg.

Area Specific Mineral Mixture

A technology leased by ICAR-CIRB

TCM-MIX™

Mineral Mixture Powder

Prevents

- Anestrous condition
- Repeat breeding
- Delayed puberty
- Milk fever
- Prolapse
- Pica

Improves

- Feed Utilization
- Overall milk yield
- Conception Rate
- Bone Strength
- Heat Symptoms
- General health condiitons

भा. कृ. अनु. प. – केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान की
तकनीकानुसार टाईटैनिक फार्मास्युटिकल्स प्रा. लि. द्वारा उत्पादित

PACKING
1.2 Kg.
&
6 Kg.

Re-Fresh

Levamisole HCL and Oxyclozanide

Bolus & Susp.

Single Dose Dewormer

JUGALI®

with Amino Acid

Rumen Care
Rumen Protection

Powder & Bolus

TITANIC Pharmaceuticals Pvt. Ltd.

E-mail : titanicppl@gmail.com | Helpline No. : 082228-13331